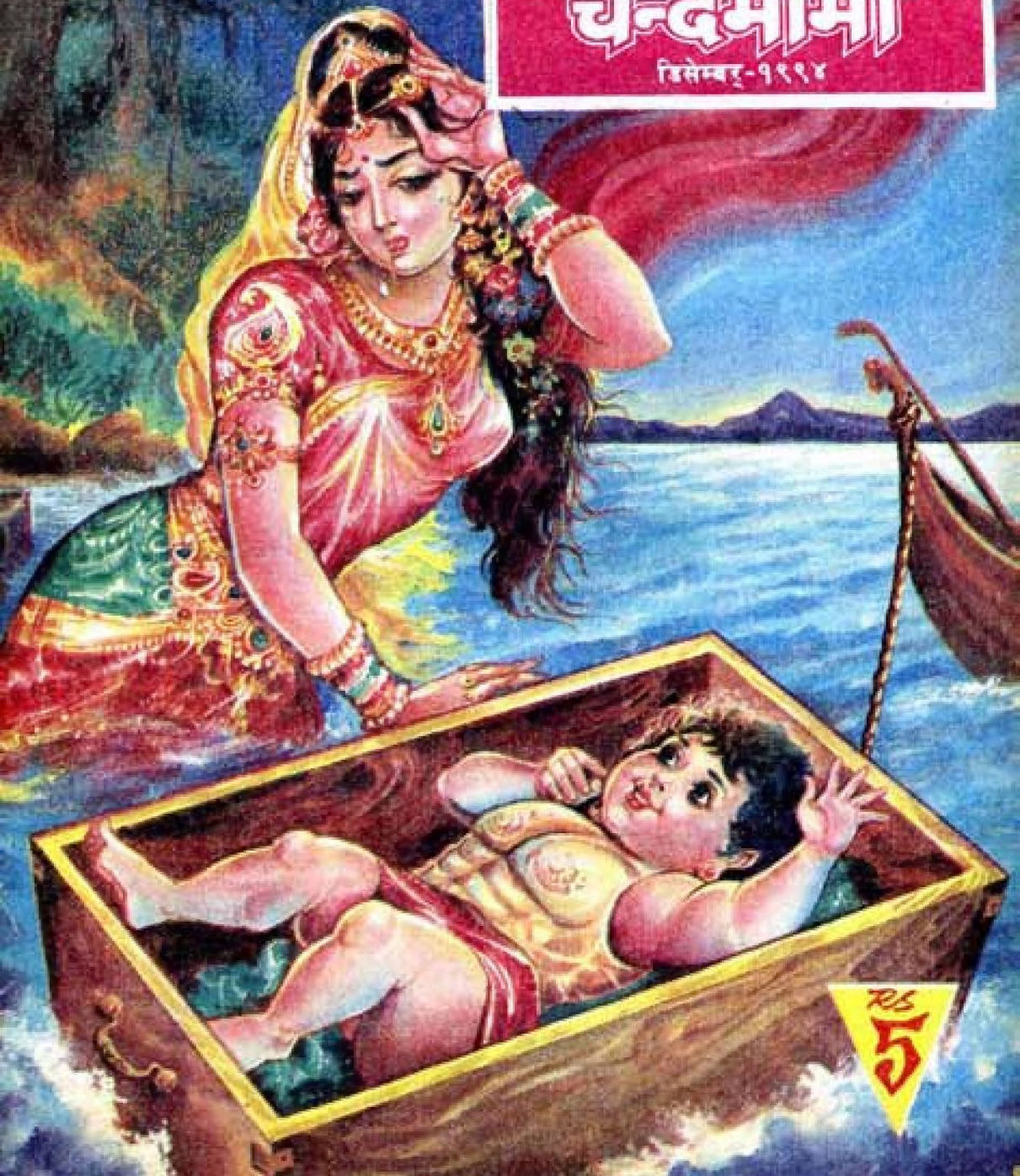


संस्कृत

चन्द्रमामा

डिसेम्बर-१९९४



Rb
5

“हो गया न
सब कुछ
उल्टा-पुल्टा”



नया कुश्ती चैम्पियन सुपर एम

जुलाई, अगस्त 1994, इनसे मिलने
आजकल का "असिस्ट" मेरी
सुपर शक्ति का नया उदाहरण बन
ती है। "असिस्ट" का नया सुपर
एम, असीस्ट सुपरमैन को असीस्ट
मिलती है। नया सुपर एम

नया सुपर एम, नया सुपर
चैम्पियन, अपनी शक्ति की सहायता
में इससे सुपर मिल्क सिस्टिक का
टैलेंट विकसित और इसे से सुपर
सिस्टिक टैलेंट। फिर अपने सुपर
असिस्ट में टैलेंट "केदार सुपर मिल्क

की सुपर शक्ति और सुपर शक्ति
से मिलकर असिस्ट का टैलेंट "सिस्टिक
असिस्ट" सिस्टिक सुपरमैन को टैलेंट
का टैलेंट "असिस्ट" का सुपर शक्ति
का टैलेंट, फिर असिस्ट में असिस्ट
टैलेंट के साथ।"

सिस्टिक के साथ!



पारले

सुपर शक्ति, सुपर स्वाद, सुपर मिल्क सिस्टिक टैलेंट



www.parle.com

कठिनशब्दानां सान्दर्भिकाः अर्थाः

अङ्गयकरोत् -	Agreed	प्रतिमा -	Statue
अण्डम् -	Egg	प्रतीतिः -	Traditional belief
अतिशयोक्तिः -	Exaggeration	प्राप्नोत् -	Obtained
अवगत्य -	Having learnt	भाल्लुकी -	Bear (Female)
अवगुण्ठनम् -	Veil	भाटकम् -	Rent
अस्थि -	Bone	भावचित्रम् -	Photograph
आच्छादकम् -	Covering	मृगया -	Hunt (N)
उत्कोचः -	Bribe	मेदः -	Brain
उदभाण्डम् -	Boiler	मोचितवान् -	Liberated
उन्मत्तः -	Mad man	यावानलः -	Jowar
उपचारः -	Entertainment	रज्जुः -	Rope
उपायनम् -	Gift	लेशमात्रम् -	A little
कवचम् -	Armour	विकल्थनम् -	Boasting
घातयति -	Kills	शकटः -	Horse-drawn cart
चयनम् -	Selection	शमयितुम् -	To pacify
चारणम् -	Grazing	शृङ्गम् -	Horn
चित्रकः -	Chettah	समञ्जनम् -	Suitability
दायित्वम् -	Responsibility	सुगन्धद्रव्यम् -	Perfume
निर्वाचनम् -	Election	स्पर्शव्यम् -	Should touch
नीडम् -	Nest	हस्तलभ्यम् -	Within hand's reach

BAND-AID®

Funtest

हर बैंड-एड
फ़नटेस्ट पैक के साथ दो
फ़नस्टिक्स फ्री

डॉ. वॉक

किंग

पंटर

हूडर

टोमी

मुक्क

रक्स

जल्दी करो!

अपने फ़नस्टिक्स जमा करना शुरू करो. अभी से!

* खुशबूदार प्लास्टिक प्रेऑन्स

विषय व शर्तें

1. इस प्रतियोगिता में 4 से 15 वर्ष के बच्चे भाग ले सकते हैं और यह प्रतियोगिता सिर्फ भारतीय नागरिकों के लिए ही है.
2. जर्मन एड बैंड और ओरिजिनी एड पैकर से जुड़े कर्मचारी व उनके सभे संबंधी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते हैं.
3. एक प्रतिभाषी जितनी बाहे उसनी एंटीस भेज सकता है.
4. हर एंटी पूरे होनी चाहिए. अधूरी व अस्पष्ट एंटीस को गिना नहीं जाएगा.
5. एंटीस प्राप्त करने की अंतिम तारीख 28 फरवरी 1999 है. पर हॉ, कंपनी, अंतिम तारीख को बदलने या उसे सीमित करने का पूरा अधिकार रखती है.

दोस्तों!

बैण्ड-एड®

फ़नटेस्ट में

शामिल हो जाओ

इसमें शामिल होना एकदम सरल है. एक स्ट्रिप [पट्टी] को रंगो और कुछ

सरल सवालों के जवाब दो. बस!

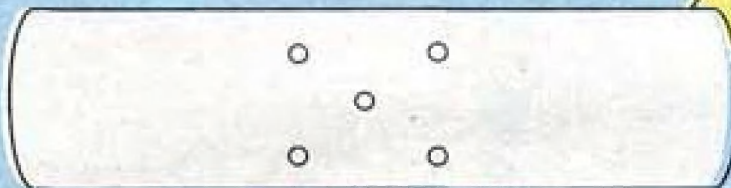
फिर जीतो कई आकर्षक इनाम.

साथ ही पहले पहुंचने वाली 1000 स्ट्रिप्स के लिए भी इनाम (इसलिए अपनी स्ट्रिप्स आज ही भेजें!)

जॉयन्सन एण्ड जॉयन्सन



फ़नस्ट्रिप बनाओ



सही जवाबों पर (✓) निशान लगाओ.

- एक बैण्ड-एड स्ट्रिप का साइज क्या होता है?
☐ 18 मि मी x 72 मि मी ☐ 17 मि मी x 70 मि मी ☐ 21 मि मी x 74 मि मी
- सिर्फ जॉन्सन एण्ड जॉन्सन की बनी बैण्ड-एड पट्टियाँ ही पूरी तरह से बीटापुलरिज होती हैं.
☐ सही ☐ गलत
- एक बैण्ड-एड फ़नटेस्ट पैक में कितनी बैण्ड-एड पट्टियाँ [हर तरह की] आती हैं?
☐ 20 ☐ 15 ☐ 30
- बैण्ड-एड के पैड पर लगी असरदार टवाई क्या है?
☐ बोरिक पाउडर ☐ बैन्डलकोनियम ग्लोराइड ☐ टिक्वर आयोडिन
- भारत में, बैण्ड-एड पट्टियों पर वॉलेंट छिप्टी के कितने केन्वटर हैं?
☐ 4 ☐ 6 ☐ 2

नाम: _____

जन्म: _____ स्थान: _____

पता: _____

स्कूल: _____

इस बैण्ड-एड को फ़नस्ट्रिप बनाने के लिए अपनी समझदारी लगाओ. इस पर लिखो, ड्राइंग बनाओ, या इसे रंगो और इस तरह बनाओ इसे एक मज़ेदार फ़नस्ट्रिप

- कोई भी स्ट्रिप वापस नहीं की जायेगी.
- जीतने वालों को डाक द्वारा सूचित किया जायेगा.
- जखों का निर्माण अंतिम और मान्य रहेगा.
- जॉन्सन एण्ड जॉन्सन कालम बताते/न बताते हुए इस स्कीम को बदलने, रद्द करने या वापस लेने का अधिकार रखती है.
- सभी स्ट्रिप्स काग़ज़ के होते हुए भी इस पर भेजे जाने चाहिए. बैण्ड-एड फ़नटेस्ट, द्वारा कैंटा बेसिकस, पोस्ट बॉक्स नं. 14605, बंबई-400 019.

टीनायाः साहसस्य गमनः, कैल्शियमः बालिका. "मूलः शक्तिः"

1997, 1998, 1999, 2000, 2001, 2002, 2003, 2004, 2005, 2006, 2007, 2008, 2009, 2010, 2011, 2012, 2013, 2014, 2015, 2016, 2017, 2018, 2019, 2020, 2021, 2022, 2023, 2024, 2025, 2026, 2027, 2028, 2029, 2030, 2031, 2032, 2033, 2034, 2035, 2036, 2037, 2038, 2039, 2040, 2041, 2042, 2043, 2044, 2045, 2046, 2047, 2048, 2049, 2050, 2051, 2052, 2053, 2054, 2055, 2056, 2057, 2058, 2059, 2060, 2061, 2062, 2063, 2064, 2065, 2066, 2067, 2068, 2069, 2070, 2071, 2072, 2073, 2074, 2075, 2076, 2077, 2078, 2079, 2080, 2081, 2082, 2083, 2084, 2085, 2086, 2087, 2088, 2089, 2090, 2091, 2092, 2093, 2094, 2095, 2096, 2097, 2098, 2099, 2100, 2101, 2102, 2103, 2104, 2105, 2106, 2107, 2108, 2109, 2110, 2111, 2112, 2113, 2114, 2115, 2116, 2117, 2118, 2119, 2120, 2121, 2122, 2123, 2124, 2125, 2126, 2127, 2128, 2129, 2130, 2131, 2132, 2133, 2134, 2135, 2136, 2137, 2138, 2139, 2140, 2141, 2142, 2143, 2144, 2145, 2146, 2147, 2148, 2149, 2150, 2151, 2152, 2153, 2154, 2155, 2156, 2157, 2158, 2159, 2160, 2161, 2162, 2163, 2164, 2165, 2166, 2167, 2168, 2169, 2170, 2171, 2172, 2173, 2174, 2175, 2176, 2177, 2178, 2179, 2180, 2181, 2182, 2183, 2184, 2185, 2186, 2187, 2188, 2189, 2190, 2191, 2192, 2193, 2194, 2195, 2196, 2197, 2198, 2199, 2200, 2201, 2202, 2203, 2204, 2205, 2206, 2207, 2208, 2209, 2210, 2211, 2212, 2213, 2214, 2215, 2216, 2217, 2218, 2219, 2220, 2221, 2222, 2223, 2224, 2225, 2226, 2227, 2228, 2229, 2230, 2231, 2232, 2233, 2234, 2235, 2236, 2237, 2238, 2239, 2240, 2241, 2242, 2243, 2244, 2245, 2246, 2247, 2248, 2249, 2250, 2251, 2252, 2253, 2254, 2255, 2256, 2257, 2258, 2259, 2260, 2261, 2262, 2263, 2264, 2265, 2266, 2267, 2268, 2269, 2270, 2271, 2272, 2273, 2274, 2275, 2276, 2277, 2278, 2279, 2280, 2281, 2282, 2283, 2284, 2285, 2286, 2287, 2288, 2289, 2290, 2291, 2292, 2293, 2294, 2295, 2296, 2297, 2298, 2299, 2300, 2301, 2302, 2303, 2304, 2305, 2306, 2307, 2308, 2309, 2310, 2311, 2312, 2313, 2314, 2315, 2316, 2317, 2318, 2319, 2320, 2321, 2322, 2323, 2324, 2325, 2326, 2327, 2328, 2329, 2330, 2331, 2332, 2333, 2334, 2335, 2336, 2337, 2338, 2339, 2340, 2341, 2342, 2343, 2344, 2345, 2346, 2347, 2348, 2349, 2350, 2351, 2352, 2353, 2354, 2355, 2356, 2357, 2358, 2359, 2360, 2361, 2362, 2363, 2364, 2365, 2366, 2367, 2368, 2369, 2370, 2371, 2372, 2373, 2374, 2375, 2376, 2377, 2378, 2379, 2380, 2381, 2382, 2383, 2384, 2385, 2386, 2387, 2388, 2389, 2390, 2391, 2392, 2393, 2394, 2395, 2396, 2397, 2398, 2399, 2400, 2401, 2402, 2403, 2404, 2405, 2406, 2407, 2408, 2409, 2410, 2411, 2412, 2413, 2414, 2415, 2416, 2417, 2418, 2419, 2420, 2421, 2422, 2423, 2424, 2425, 2426, 2427, 2428, 2429, 2430, 2431, 2432, 2433, 2434, 2435, 2436, 2437, 2438, 2439, 2440, 2441, 2442, 2443, 2444, 2445, 2446, 2447, 2448, 2449, 2450, 2451, 2452, 2453, 2454, 2455, 2456, 2457, 2458, 2459, 2460, 2461, 2462, 2463, 2464, 2465, 2466, 2467, 2468, 2469, 2470, 2471, 2472, 2473, 2474, 2475, 2476, 2477, 2478, 2479, 2480, 2481, 2482, 2483, 2484, 2485, 2486, 2487, 2488, 2489, 2490, 2491, 2492, 2493, 2494, 2495, 2496, 2497, 2498, 2499, 2500, 2501, 2502, 2503, 2504, 2505, 2506, 2507, 2508, 2509, 2510, 2511, 2512, 2513, 2514, 2515, 2516, 2517, 2518, 2519, 2520, 2521, 2522, 2523, 2524, 2525, 2526, 2527, 2528, 2529, 2530, 2531, 2532, 2533, 2534, 2535, 2536, 2537, 2538, 2539, 2540, 2541, 2542, 2543, 2544, 2545, 2546, 2547, 2548, 2549, 2550, 2551, 2552, 2553, 2554, 2555, 2556, 2557, 2558, 2559, 2560, 2561, 2562, 2563, 2564, 2565, 2566, 2567, 2568, 2569, 2570, 2571, 2572, 2573, 2574, 2575, 2576, 2577, 2578, 2579, 2580, 2581, 2582, 2583, 2584, 2585, 2586, 2587, 2588, 2589, 2590, 2591, 2592, 2593, 2594, 2595, 2596, 2597, 2598, 2599, 2600, 2601, 2602, 2603, 2604, 2605, 2606, 2607, 2608, 2609, 2610, 2611, 2612, 2613, 2614, 2615, 2616, 2617, 2618, 2619, 2620, 2621, 2622, 2623, 2624, 2625, 2626, 2627, 2628, 2629, 2630, 2631, 2632, 2633, 2634, 2635, 2636, 2637, 2638, 2639, 2640, 2641, 2642, 2643, 2644, 2645, 2646, 2647, 2648, 2649, 2650, 2651, 2652, 2653, 2654, 2655, 2656, 2657, 2658, 2659, 2660, 2661, 2662, 2663, 2664, 2665, 2666, 2667, 2668, 2669, 2670, 2671, 2672, 2673, 2674, 2675, 2676, 2677, 2678, 26



पुस्तिका को सम्बन्धमा अर्को जस्यो उल्लेख गर्नुपर्ने छैन



अथर्ववेदः



100



1. **Introduction**



“अपने अंग पर ध्यान दे।
अपने शरीर को अपने मन से जोड़ें।”



प्रमाणित करने के लिए



1997-1998



1995-1996



ਸ੍ਰੀ ਭਗਵੰਤੀ ਸਾ ਸ੍ਰੀ: ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ:
ਸ੍ਰੀ ਸ੍ਰੀ ਭਗਵੰਤੀ: ਸ੍ਰੀ: ਸ੍ਰੀ ਸ੍ਰੀ ਸ੍ਰੀ ਸ੍ਰੀ:



मार्ग वास्तव्य भुजः । अर्धं टीका
 भुजः मार्ग वास्तव्य भुजः । अर्धं टीका
 भुजः मार्ग वास्तव्य भुजः । अर्धं टीका



अथानि निःशुल्क उपहासणीः॥

५०। मित्राणि स्थितिं आपन्नं आभूत् ३०० क्षात्राणि चरन् वृद्धं कैवल्यात् + ५५५ (पार्श्वं वनं
 विहाय) विश्वं तव वामं, जम्बवादीश्वं, पाटलाक्षतं च तव, प्रति- पार्श्वं शङ्खद्वयं निमित्तं, मित्रिभ्यः
 राज्ञः, वनं, ५०००२५

चन्द्रमामा

संस्थापक: - 'चक्रपाणिः'

सञ्चालक: - 'नागिरेड्डी'

बालकार्मिकता - कश्चन परिहारोपायः

दीपावली आगता गता च । प्रकृतिविकोपात् यः रोगः उत्पन्नः अस्ति, तस्मात् रोगात् भीताः सन्तः अपि जनाः दीपावलीम् आचरितवन्तः । स्फोटकानां स्फोटनम् एव दीपावल्याः विशेषता इति कारणतः जनाः स्फोटकानि स्फोटयन्तः उत्सवस्य आनन्दम् अनुभूतवन्तः ।

स्फोटकानि न स्फोटनीयानि इति ये चिन्तयन्ति, ते जानन्ति किम् - अस्मिन् स्फोटकनिर्माणकार्ये तत्सम्बन्धिकार्येषु च निरतानां स्थितिः कीदृशी अस्ति इति । अस्मिन् अपायकरे स्फोटकनिर्माणकार्ये ५०% जनाः उपपञ्चदशवर्षीयाः बालकाः । जगत्प्रसिद्धं मदराससमीपस्थं शिवकाशिसदृशं किमपि स्फोटकनिर्माणस्वर्गं यदि पश्यामः, तर्हि एतादृशं भयङ्करं सत्यं ज्ञातुं शक्नुमः ।

भारतीयाः बहवः बालाः न केवलं स्फोटकनिर्माणकार्यं कुर्वन्ति, अपि तु कटनिर्माणं, चर्मणः वस्तूनां निर्माणं, अग्निपेटिकायाः निर्माणम् इत्यादिकं च कुर्वन्ति । एतादृशाः बालाः बालकार्मिकाः इति परिगण्यन्ते । एतेषु दिनेषु बालकार्मिकानां विषये विशेषतः चर्चा प्रचलति । एतद्विषये कश्चन परिहारोपायः चिन्तनीयः इति अधिकारिभिः चिन्त्यमानम् अस्ति ।

किमर्थं बालाः अध्ययनं परित्यज्य उद्योगार्थिनः सञ्जाताः, बालकार्मिकाः इति नाम च प्राप्तवन्तः ? अत्र आर्थिकसमस्या एव कारणम् । किञ्चन कुटुम्बं यदि दारिद्र्येण अतीव कष्टम् अनुभवति, यदि च तस्य जीवननिर्वहणम् एव कष्टाय भवति, तर्हि कुटुम्बस्य स्वामिना इव तत्पुत्रैः अपि अनिवार्यतया धनसम्पादनं करणीयं भवति । अतः अत्र पोषकाः बालाः वा न दोषभागिनः ।

एषा बालकार्मिकसमस्या परिहरणीया चेदपि न तावत् सुलभसाध्या । किन्तु आर्थिकसमस्या यदि परिहृता भविष्यति, तर्हि एषा समस्या परिहृता भवेत् ।

बालकार्मिकसमस्यापरिहारे कः प्रथमं प्रयत्नं कुर्यात् ?

सम्पुटः - ११

डिसेम्बर - १९९४

सञ्चिका - ९

प्रतिकृतितूल्यं - रु. ५.०० * वार्षिकं शाहकशुल्कं - रु. ६०.००



*I shared my homework. And some maths.
Did some patterns. Shared my Mortons.*



MORTON

SWEETS

We enjoy our School share. It has been Delicious and Creamy Milk, Chocolate and and Coconut many other Um m m



days...and Lunch Breaks more so our Family's favourite for years and yummy in so many Glucose and Sugar.

Coconut Cookies, Toffees, Lacto delicious treats. m m, Every bite a



Rose Bonbons,

yummy delight.



with Mortons which we years. All with the goodness of


Eclairs, Supreme Chocolate Mango King and so



*A lifetime of
real goodness*

MORTON CONFECTIONERY & MILK PRODUCTS FACTORY

P.O. : Marhowrah 841 418, Dist. : Saran, Bihar

Caution Notice:  and its wrappers are registered trade mark of Upper Ganges Sugar & Industries Ltd. Any infringement of trade mark rights is liable to prosecution.

वार्ताविशेषः -

श्रीलङ्कायां परिवर्तनम्

श्रीलङ्कायाः भूतपूर्वप्रधानमन्त्रिण्याः श्रीमत्याः बण्डारनायिकेवर्यायाः पुत्री श्रीमती चन्द्रिकाकुमारतुङ्गा इदानीं श्रीलङ्कायाः प्रधानमन्त्रिपदवीं प्राप्तवती अस्ति । प्रधानमन्त्रिपदवीं प्राप्तवती एषा द्वितीया महिला ।

१९५९ तमे वर्षे तदानीन्तनप्रधानमन्त्रिणः एस्. डब्ल्यू. आर्. डि. बण्डारनायकवर्यस्य हननम् अभवत् । तदनन्तरं तस्य पत्नी सिरिमावोबण्डारनायिकेवर्या १९६० तमे वर्षे प्रधानमन्त्रिपदवीं प्राप्य, प्रपञ्चे प्रधानमन्त्रिपदवीं प्राप्तवती प्रथमा महिला इति ख्यातिं प्राप्तवती । सा १९६० तः १९६५ पर्यन्तं, १९७० तः १९७७ पर्यन्तं च प्रधानमन्त्रिपदव्याम् आसीत् । १९७८ तमे वर्षे प्रवृत्ते निर्वाचने श्रीलङ्का-स्वतन्त्रपक्षस्य नायकत्वं वहन्ती सिरिमावो युनैटेड् नेषनल् पक्षेण सह स्पर्धमाना पराजयं प्राप्तवती ।

युनैटेड् नेषनल् पक्षः सप्तदश वर्षाणि यावत् अनुस्यूततया अधिकारावधौ आसीत् । गते अगस्ट्मासे प्रवृत्ते निर्वाचने युनैटेड् नेषनल् पक्षः पराजयं प्राप्नोत् । प्रतिपक्षः श्रीलङ्का-स्वतन्त्रपक्षः अन्ये च मित्रपक्षाः आधिक्येन मतं प्राप्तवन्तः । यु. एन्. पि. दशस्थानैः पराजयं प्राप्नोत् । अन्येषां मित्रपक्षाणां सहकारेण पीपल्स्-अलयन्स्पक्षस्य श्रीमती चन्द्रिकाकुमारतुङ्गावर्या प्रधानमन्त्रित्वेन चिता अभवत् । सा अगस्ट्मासस्य १९ दिनाङ्के एकविंशतया मन्त्रिभिः सह प्रधानमन्त्रिपदवीं प्राप्य स्वदायित्वं निरूढवती । तस्याः मन्त्रिमण्डले श्रीमती सिरिमावो अपि एकं स्थानं प्राप्तवती इति तु विशेषः ।

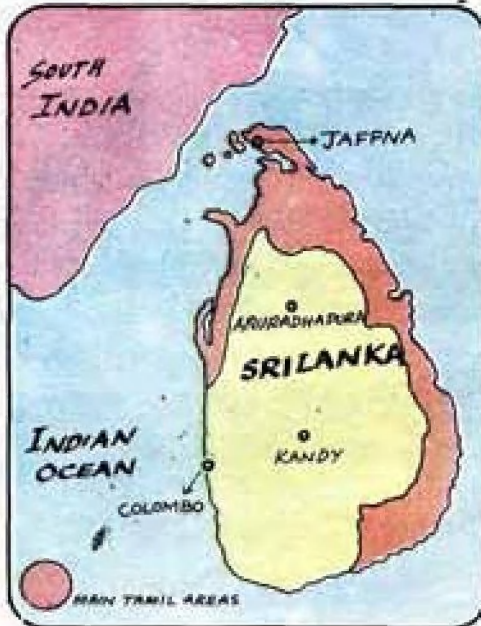
भारतस्य दक्षिणे विद्यमानः द्वीपः श्रीलङ्का । रामायणे 'लङ्का' इति यः प्रदेशः निर्दिष्टः सः प्रदेशः एव श्रीलङ्का । महाराजः अशोकः बौद्धमतप्रचारार्थं पुत्री श्रीलङ्कां प्रेषितवान् आसीत् इति विषयः सर्वैः ज्ञातः एव । अनुराधापुरस्थे बौद्धालये स्थितः बुद्धदन्तः २००० वर्षेभ्यः रक्ष्यमाणः अस्ति ।



सद्यःकालीनः इतिहासः अपि स्थूलतया परिशीलनीयः । षोडशे शतके फ्रेञ्जनाः श्रीलङ्कायाः आक्रमणं कृतवन्तः । सप्तदशे शतके श्रीलङ्का 'डच्'जनानाम् अधीना जाता । ब्रिटिष्जनाः अष्टादशे शतके श्रीलङ्कां स्वायत्तीकृतवन्तः । १९४८ तमे वर्षे श्रीलङ्का ब्रिटिष्-कामन्-वेल्त् तः स्वतन्त्रदेशः जातः । १९४८ तमे वर्षे सोषलिस्ट् रिपब्लिक् रूपेण प्रकटिता अभवत् श्रीलङ्का । 'सिलोन्' (सिंहलम्) इति पूर्वं यत् नाम आसीत् तत् परित्यज्य 'श्रीलङ्का' इति नाम्ना सा प्रसिद्धिं गता । १९७७ तमे वर्षे प्रवृत्ते निर्वाचने जयवर्धनः श्रीलङ्कायाः अध्यक्षः जातः ।

१९८९ तमे वर्षे युनैटेड् नेषनल् पक्षः यद्यपि अधिकारं प्राप्नोत्, तथापि बहुमतं न प्राप्तवान् सः पक्षः । तावत्पर्यन्तम् अपि प्रधानमन्त्रिपदव्यां यः प्रेमदासः आसीत्, सः अध्यक्षः जातः । १९९३ तमे वर्षे प्रेमदासः 'मेडि' नामके उत्सवे भागं गृहीतवान् आसीत् । तदा सः केनचित् हतः अभवत् । अनन्तरं तदानीन्तनः प्रधानमन्त्री डि. वि. विजयतुङ्गा अध्यक्षपदवीं प्राप्तवान् । तुङ्गवर्यस्य अध्यक्षपदवीकालः १९९५ वर्षस्य जनवरीमासे समाप्तः भविष्यति । अध्यक्षपदव्यर्थं निर्वाचनं नवेम्बरमासे प्रचलिष्यति ।

श्रीलङ्कादेशे अधिकसंख्याकाः सिंहलीयाः निवसन्ति । बौद्धाः अपि निवसन्ति । श्रीलङ्कायाः उत्तरभागे पूर्वभागे च तमिळुजनाः निवसन्ति । श्रीलङ्काजनसंख्यायाः ५% तमिळुजनाः सन्ति । १९५६ तमे वर्षे भिन्नमतयोः मध्ये हिंसात्मिकाः घटनाः प्रवृत्ताः । ताः एव हिंसात्मिकाः घटनाः तीव्ररूपं प्राप्य १९८३ तमे वर्षे युद्धरूपेण परिणताः । तस्मिन् युद्धे विशतिसहस्राधिकाः जनाः मरणं प्राप्तवन्तः ।



चन्द्रिकाबण्डारनायकेवर्या पूर्वं फ्रान्स्देशे अध्ययनं कुर्वती आसीत् । तस्मिन् समये राजकीयविषये आसक्तिमन्तं चित्रनटं विजयकुमारतुङ्गवर्यं परिणीतवती चन्द्रिका । विजयकुमारतुङ्गा श्रीलङ्कायाः तमिळुनायकैः सह आत्मीयतां सम्पाद्य, तत्रत्याः समस्याः परिहृत्य उभयमतयोः मध्ये यः विवादः प्रचलति स्म, तस्य निवारणार्थं प्रयत्नं कृतवान् । किन्तु सः १९८९ तमे वर्षे हतः अभवत् । १९९० तमे वर्षे श्रीमती चन्द्रिकाकुमारतुङ्गा श्रीलङ्का-स्वतन्त्रपक्षं गतवती । १९९३ तमे वर्षे प्रवृत्ते राज्यसभानिर्वाचने सा पश्चिमप्रदेशस्य मुख्यमन्त्रिपदवीं प्राप्य राजकीयजीवनम् आरब्धवती ।



राक्षसस्य मानवीयता

सीता अतीव सुन्दरी । तस्याः मनः अपि अतीव निर्मलम् । अतः एव सा विमातुः देवक्याः महान्तम् अपि कोपं मौनं सहते स्म ।

देवक्याः पुत्री गीता । सा सीतायै असूयति । गीता सर्वदा सीतायाः विषये मातुः समीपे विना कारणम् आरोपं करोति ।

केनचित् दरिद्रेण कुरुपिणा सह वा सीतायाः विवाहः करणीयः इति देवकी चिन्तितवती । तादृशः दरिद्रः वरः कुत्रचित् अस्ति इति वार्तां कुतश्चित् श्रुत्वा देवकी वरपक्षीयान् उद्दिश्य वार्तां प्रेषितवती यत् - वधूँ द्रष्टुम् आगच्छन्तु इति । किन्तु देवक्या प्रेषिता वार्ता यैः प्राप्तव्या आसीत् ते न प्राप्तवन्तः, अपि तु अन्ये तां वार्तां ज्ञात्वा वधूदर्शनार्थं देवक्याः गृहम् आगतवन्तः ।

सीतां द्रष्टुम् आगतः वरः अतीव सुन्दरः

असीत् । अपि च तस्य वेषभूषादिना ज्ञायते स्म यत् सः धनिकः अपि इति । एतादृशाय सीतां दातुम् अनिच्छन्ती देवकी वधूदर्शनार्थं स्वपुत्रीं गीतां सञ्जीकृतवती । वरः अपि गीताम् अञ्जीकर्तुं सिद्धः एव आसीत् । तावता पानजलं स्वीकृत्य तत्र आगतां सीतां वरः दृष्टवान् । सीतायाः सौन्दर्येण आकृष्टः वरः 'अहं सीताम् एव परिणेष्यामि' इति उक्तवान् ।

एतस्मात् असूयाविष्टा देवकी वरं बोधितवती - 'सीतायाः व्यवहारः सम्यक् नास्ति । सा भवतः अनुरूपान् न' इति । किन्तु वरः एतत् वचनं गम्भीरतया न परिगणितवान्, अपि तु एताम् एव परिणेष्यामि इति साग्रहम् उक्तवान् । अनन्तरं देवकी 'विचिन्त्य वार्तां प्रेषयामः' इति उक्त्वा वरपक्षीयान् प्रेषितवती ।

एतस्मात् प्रकरणात् अतीव कुपिता



देवकी पुत्री गीताम् उक्तवती - "एषा सीता अस्मान् पीडयितुम् एव जन्म प्राप्तवती अस्ति । एषा यावत् अत्र तिष्ठति तावत् भवत्याः विवाहः न भविष्यति । अतः अद्य रात्रौ एतस्याः शरीरे उष्णतैलं पातयिष्यामि । तदा एषा कुरूपिणी भविष्यति" इति ।

एतत् श्रुत्वा गीता महता सन्तोषेण - "तथैव करोतु । तदा अहम् एव सौन्दर्यवती भविष्यामि" इति उक्तवती ।

एतत् श्रुत्वा अतीव खिन्ना सीता तद्दिने एव रात्रौ गृहात् निर्गतवती । बहुदूरं गत्वा सा अतीव श्रान्ता अरण्ये कस्यचित् वृक्षस्य अधः उपविष्टवती । निद्रां कृतवती च ।

किञ्चित्कालानन्तरं जागरिता सीता उत्थितवती । तस्मिन् प्रदेशे रक्षणं कुर्वन्तं कश्चित् विकृताकारकं दृष्टवती सीता । सीतायाः निद्रासमये चित्रकः कश्चित् तस्याः उपरि आक्रमणार्थम् आगतवान् आसीत् । तदा तां चित्रकतः रक्षितवान् सः विकृताकारकः तदारभ्य तत्रैव स्थित्वा सीतायाः रक्षणं कुर्वन् आसीत् । एतत् ज्ञात्वा सीता तं धन्यवादम् उक्तवती ।

तदा सः विकृताकारकः तां पृष्टवान् - "अहं भवतीं परिणेतुम् इच्छामि । भवती एतत् अनुमन्यते वा ?" इति ।

विकृताकारकः सीतायाः इष्टाय न अभवत् । किन्तु सः आत्मानं रक्षितवान् इत्यतः सा उक्तवती - "अहं भवन्तम् एव परिणयेयम् । किन्तु तथा कर्तुं न शक्नोमि । मम जातकानुसारं मया कश्चन राक्षसः परिणेतव्यः । तदर्थम् एव अहम् अरण्यम् आगतवती" इति ।

तदा विकृताकारकः उक्तवान् - "सः राक्षसः यदि अत्र आगमिष्यति, तर्हि तं मारयित्वा अहं भवतीं परिणयेयामि" इति ।

अपरक्षणे एव - "अहम् आगतः एव" इति वदन् कश्चित् राक्षसः तस्य पुरतः प्रत्यक्षः जातः । तस्य राक्षसस्य नेत्रे अग्निगोली इव दृश्येते स्म ।

राक्षसः विकृताकारकम् उक्तवान् - "भवतः आशयानुसारं ज्ञटिति अहं भवतः पुरतः उपस्थितवान् अस्मि । भवान् मां मारयित्वा एतां परिणयतु । नो चेत् अहम् एव

भवन्तं मारयित्वा एतां परिणेष्यामि” इति ।

आगतं राक्षसं दृष्ट्वा भीता सीता भयेन कम्पमाना मूर्च्छां गता । विकृताकारकः तु राक्षसं परीक्षादृष्ट्या पश्यन् - “अहं भीरुः न । तथापि राक्षसेन भवता सह युद्धं कर्तुं न इच्छामि” इति वदन् ततः पलायितवान् ।

राक्षसः सीतायाः उपचारं कृतवान् । तस्मात् सीता सचेतना जाता । तदा राक्षसः ताम् उक्तवान् - “मम दर्शनात् भवती भीता मा भवतु । भवत्याः वचनश्रवणात् मयि अनुरागः उत्पन्नः अस्ति । अतः आवां विवाहितौ भवाव” इति ।

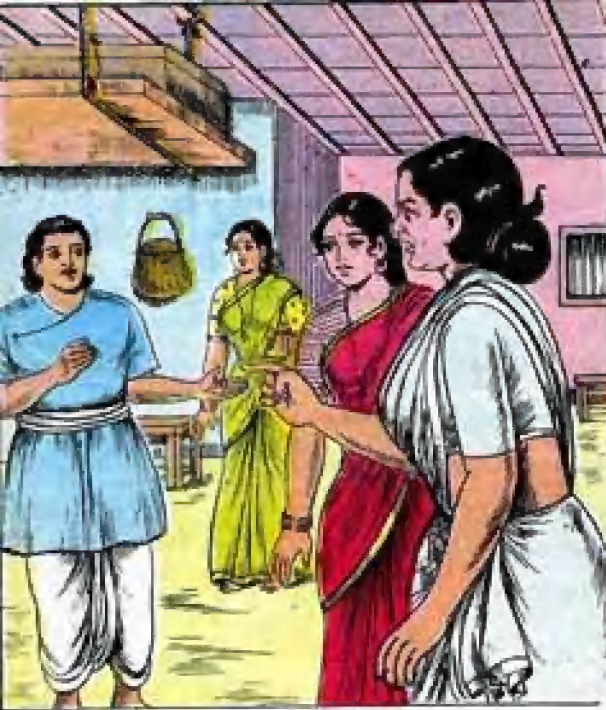
चिन्तित्कालानन्तरं सीता आत्मानं निगृह्य - “अहं भवतः आकरस्य अनुरूपा सर्वथा न । अतः आवयोः विवाहः कथं शक्यः ?” इति पृष्टवती ।

तदा राक्षसः - “अहं कामविद्यां जानामि । भवत्याः निमित्तम् अहं मन्मथाकारं सुन्दरं मानवरूपं प्राप्तुं शक्नोमि” इति वदन् सुन्दरयुवकरूपेण परिवृत्तः ।

राक्षसः यद्यपि युवकः जातः, तथापि जन्मतः सः राक्षसः एव इति भीतिः सीतायाः । तस्मात् मुक्तिं प्राप्तुं मार्गम् अजानती सीता उक्तवती - “अहं मातृवाक्यपरिपालिका अस्मि । अतः आवयोः विवाहार्थं तस्याः अङ्गीकारः आवश्यकः” इति ।

राक्षसः एतत् वचनम् अङ्गीकृत्य सीताया सह तस्याः ग्रामं प्रति प्रस्थितवान् । राक्षसः वेगेन चलति स्म । सीता तम् अनुसरतुं कष्टम् अनुभवति स्म । अतः सः सीताम् उन्नीय क्षणायन्तरे तस्याः गृहं प्राप्तवान् ।





गृहप्राप्त्यनुक्षणं सीता गृहस्य अन्तः गत्वा विमातरं देवकीं रहस्येन उक्तवती - "अम्ब ! राक्षसः कश्चित् माम् एव परिणेष्यामि इति वदन् मया सह आगतवान् अस्ति । कृपया मां रक्षतु" इति ।

विमातुः देवकीतः राक्षसाः अपि भीताः भवन्ति इति सीतायाः चिन्तनम् । किन्तु देवकी सीतायाः वचनं न लक्षितवती । अपि तु तस्याः वेणीं गृहीत्वा आकर्षन्ती - "माम् अनुकृपां रात्रौ कुत्र गतवती आसीत् भवती ?" इति तर्जितवती ।

तावता तत्र आगतः राक्षसः देवकीम् उक्तवान् - "रे वृद्धे ! सीतां त्यजतु । यदि भवती सीतां पीडयति, तर्हि अहं भवतीं मारयिष्यामि" इति ।

राक्षसात् भीता देवकी सीतातः दूरं गत्वा राक्षसं पृष्टवती - "भवान् कः ? मम गृहम् आगत्य माम् एव भाययति वा भवान् ?" इति ।

तदा राक्षसः उक्तवान् - "अहं भवत्याः पुत्रीं सीताम् इष्टवान् अस्मि । आवयोः विवाहार्थं भवत्याः अनुमतिः आवश्यकी । अतः भवती यत् वदति, तत् कर्तुं सिद्धः अस्मि अहम्" इति ।

सुन्दरयुवकरूपेण स्थितः सः मूलतः राक्षसः इति न जानाति देवकी । अतः सा - "भवान् मम द्वितीयपुत्रीं गीतां परिणयतु" इति उक्तवती ।

एतत् श्रुत्वा राक्षसः अनङ्गीकारपूर्वकं शिरः चालयन् उक्तवान् - "गतजन्मनि रामबाणात् मृतः राक्षसः अहम् । एकपत्नीव्रतस्थस्य मम वचने परिवर्तनं सर्वथा नास्ति । अहं सीताम् एव परिणेष्यामि" इति ।

तदा देवकी राक्षसम् उद्दिश्य - "भवतः इच्छानुसारम् एव सर्वं प्रचलेत् इत्युक्ते सर्वथा न शक्यते । मया उच्यमानानि त्रीणि कार्याणि भवान् निर्वक्ष्यति चेत् भवतः इच्छानुसारम् एव सीता भवतः पत्नी भविष्यति । नो चेत् मम इच्छानुसारं गीताम् एव भवान् परिणयेत् । एतत् भवान् अनुमन्यते वा ?" इति पृष्टवती ।

"मम एकः नियमः भवत्या स्मरणीयः यत् - गृहस्य स्वच्छीकरणकार्यं मत्तः न कारणीयम् । तेन भवत्याः एव महती हानिः"

इति उक्तवान् राक्षसः ।

देवकी राक्षसस्य एतत् वचनं गम्भीरतया न परिगणितवती । अपि तु सा बृहदाकारकम् उदभाण्डं प्रदर्शयन्ती उक्तवती - 'घण्टाभ्यन्तरे एतत् भाण्डं जलेन पूरणीयम्' इति ।

देवक्याः वचनं श्रुत्वा राक्षसः अनुक्षणम् उदभाण्डं कूपसमीपं नीतवान् । उदभाण्डं गृहीत्वा कूपम् अवतीर्णः । क्षणाभ्यन्तरे एव भाण्डं स्कन्धयोः उपरि संस्थाप्य कूपात् बहिः आगत्य तत्रैव पार्श्वे उदभाण्डं स्थापितवान् । अनन्तरं च देवक्याः समीपं गत्वा पृष्ठवान् - "उदभाण्डं कुत्र स्थापनीयम्?" इति ।

राक्षसस्य वचनस्य तात्पर्यम् अजानती देवकी कूपसमीपं गतवती । जलेन पूर्णं भाण्डं दृष्ट्वा आश्चर्यचकिता सा । "भवान् बलशाली इति तु निर्णीतम् । इदानीं भवतः बुद्धिशक्तिः मया परीक्षणीया अस्ति । अस्माकं गृहे वस्तूनि इतस्ततः विकीर्णानि सन्ति । घण्टाभ्यन्तरे तानि वस्तूनि व्यवस्थितं स्थापयतु" इति उक्तवती देवकी ।

"अवश्यं करोमि । भवन्तः सर्वे किञ्चित्कालं यावत् बहिः तिष्ठन्तु" इति उक्तवान् राक्षसः ।

गृहसदस्याः सर्वे अपि गृहात् बहिः गतवन्तः । क्षणाभ्यन्तरे एव राक्षसः सर्वान् अन्तः आहूतवान् । सर्वे अन्तः गतवन्तः । गृहस्य सर्वाणि अपि वस्तूनि व्यवस्थितं स्थापितानि सन्ति । भारयुताः पेटिकाः धान्यानां गोण्यः च अद्वे स्थापिताः सन्ति । अत्यावश्यकानि नित्योपयोगीनि च वस्तूनि



सुलभतया हस्तलभ्यानि सन्ति ।

व्यवस्थितं गृहं दृष्ट्वा सन्तुष्टा देवकी राक्षसम् उद्दिश्य - "गृहे वस्तूनि व्यवस्थितं स्थापितवान् भवान् । किन्तु गृहस्य स्वच्छतां न कृतवान् खलु ! एतावत् अपि न ज्ञातं वा भवता" इति तम् उपहसितवती ।

तदा राक्षसः उक्तवान् - "स्वच्छताकार्यं भवत्या करणीयम् । मया पूर्वम् एव सूचितम् अस्ति - 'स्वच्छताकार्यं मद्द्वारा कारयति चेत् भवत्याः हानिः भविष्यति' इति" इति ।

एतत् श्रुत्वा गीता क्रोधेन राक्षसम् उक्तवती - "या कापि हानिः भवतु नाम अस्माकम् । कस्मात् अपि भीतिः नास्ति अस्माकम् । मम मात्रा उक्तानि कार्याणि भवता करणीयानि एव । नो चेत् पराजयम्

अङ्गीकृत्य इतः निर्गच्छतु भवान्” इति ।

तदा राक्षसः देवकीम् उक्तवान् - “स्वकीयस्य कार्यस्य स्वयम् एव करणं बुद्धिमत्तायाः लक्षणम् । तथापि यदि भवती आग्रहं करोति, तर्हि अहं स्वच्छताकार्यम् अपि करोमि” इति ।

एतत् श्रुत्वा देवकी उक्तवती - “एतत् तृतीयं कार्य-स्वच्छतां भवान् करोति चेत् एव भवान् जयं प्राप्तवान् इत्यर्थः” इति ।

तदा राक्षसः हसन् - “मम दृष्ट्या अस्मिन् गृहे कल्मषमनस्के भवती, भवत्याः पुत्री गीता च अवकरसरक्ष्यौ” इति वदन् हस्तेन ते गृहीत्वा सुदूरं क्षिप्तवान् । अनन्तरं च सीताम् उक्तवान् - “मया क्षिप्ते ते द्वे अपि मृते भविष्यतः । अकस्मात् जीवतः चेदपि अत्र तु भीत्या न आगमिष्यतः” इति ।

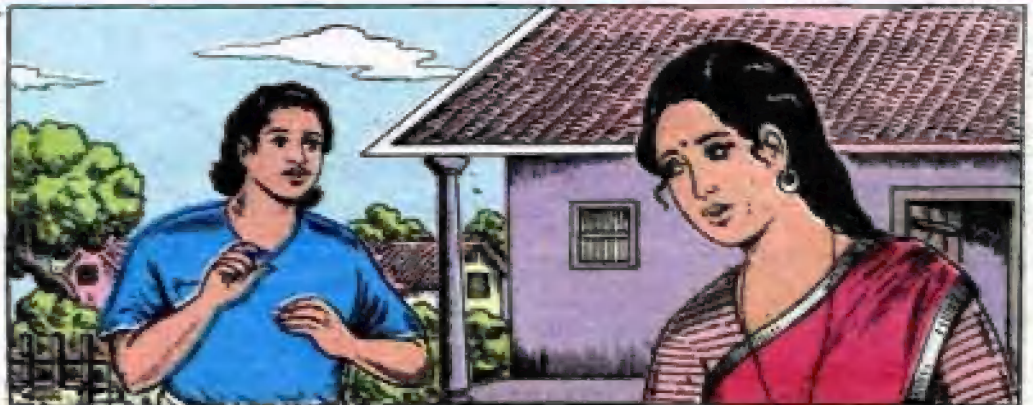
एतस्मात् आश्चर्यचकिता सीता राक्षसं पृष्ठवती - “ते द्वे अपि मारयितुं समर्थः अपि भवान् मम विमात्रा उक्तानि कार्याणि किमर्थं कृतवान् ?” इति ।

सीतायाः वचनं श्रुत्वा राक्षसः क्षणकालं

मौनं स्थित्वा उक्तवान् - “अहं भवत्यां नितराम् अनुसगवान् अस्मि । भवती उक्तवती यत् - मातुः अनुमतिं विना मां न परिणेष्यामि इति । अतः अहं भवत्याः विमात्रा उक्तानि सर्वाणि कार्याणि कृतवान् । यद्यपि अहं स्वच्छताकरणविषये पूर्वम् एव मम नियमम् उक्तवान्, तथापि सा अनुरोधं कृतवती - “गृहस्य स्वच्छतां करोतु” इति । दुर्मार्गिणः महती आपत् समुपस्थिता चेदपि वास्तविकताम् अवगन्तुं न शक्नुवन्ति । अतः तयोः वचनतः एव ते यथा मरणं प्राप्नुयातां, तथा कृतवान् अहम् । ज्ञातं खलु !” इति ।

सीता मौनं शिरं चालितवती ।

‘विमात्रा सह एतावन्ति वर्षाणि जीवितवती अहं किञ्चिदपि सुखं न अनुभूतवती । किन्तु इदानीं मदर्थं यत्किमपि साधयितुं सिद्धः शक्तिमान् अस्ति एषः राक्षसः । अतः एतस्मात् भीतिः ‘सर्वथा नास्ति’ इति चिन्तयन्त्यां सीतायां विवेकः उदितः । सुन्दरयुवकरूपेण परिवृत्तं राक्षसं परिणीय सीता सुखेन जीवितवती ।





भुवनसुन्दरी

राजा वर्धनः फ्रिजियादेशस्थस्य द्राय्न्गरं पालयति स्म । तस्य पत्नी यदा गर्भिणी आसीत्, तदा सा एकं स्वप्नं दृष्टवती । स्वप्ने सा दृष्टवती यत् स्वर्गर्भतः उत्पन्नः अग्निः समग्रं द्राय्न्गरं भस्मसात् कुर्वन् अस्ति इति । अतः भयात् कन्दन्ती सा निद्रातः उत्थितवती । आत्मना दृष्टं स्वप्नं पतिं निवेदितवती च ।

लोकनाथः महाराजस्य वर्धनस्य पुत्रेषु अन्यतमः । सः महान्नामी । भविष्यम् अपि वक्तुं समर्थः लोकनाथः । अतः राजा वर्धनः पत्न्या दृष्टं स्वप्नविषयं लोकनाथं निवेदितवान् ।

तदा लोकनाथः उक्तवान् - “अग्रे जायमानः भवतः पुत्रः सर्वनाशकः

भविष्यति । अतः जननसमनन्तरम् एव पुत्रं मारयतु भवान्” इति ।

कस्मिंश्चित् दिने सायंकालसमये वर्धनस्य पत्नी पुत्रं प्रसूतवती । पुत्रवात्सल्येन स्वयम् एव पुत्रं मारयितुम् अनिच्छन् वर्धनः तत् कार्यं कञ्चित् गोपालकम् आदिष्टवान् ।

वर्धनः पुत्रमारणं यं गोपालकम् आदिष्टवान्, सः गोपालकः धेनूः पालयन् ऐहानामकपर्वते तिष्ठति । महाराजस्य आज्ञानुसारं सः शिशुं स्वीकृत्य ऐडापर्वतं गतवान् ।

किन्तु गोपालकस्य मनः तस्य शिशोः मारणं न अङ्गथकरोत् । सः शिशुं पर्वतशिखरे एव त्यक्त्वा स्वगृहं गतवान् । किन्तु सः शिशुः न मृतः । कुतश्चित् आगता काचित् भालूकी



शिशवे स्वस्तन्यं पाययित्वा तं रक्षितवती ।

पञ्चदिनानन्तरं गोपालकः पुनः पर्वतशिखरं गतवान् । तत्र भल्लूक्या पाल्यमानं शिशुं दृष्ट्वा अतीव आश्चर्यचकितः सः 'एतस्य शिशोः मरणयोगः नास्ति । एषा दैवलीला एव' इति चिन्तितवान् ।

किञ्चित्कालानन्तरं भल्लूकी ततः निर्गता । तदा गोपालकः तं शिशुं स्वीकृत्य गृहं गतवान्, तस्य पोषणं कृतवान् च । सः शिशुः सुन्दरः आसीत् इति कारणतः 'मोहनः' इति तस्य नाम निश्चितम् अभवत् ।

एवंरूपेण मरणात् मुक्तः मोहनः गोपालकस्य गृहे वर्धमानः प्रौढः जातः । बाल्यात् अपि मोहनः अतीव बुद्धिमान्

बलवान् च आसीत् । तस्य बाल्यकाले केचन चोराः मोहनेन चारयन्तीः धेनूः चोरितवन्तः । तदा मोहनः चोरान् गृहीत्वा तान् सम्यक् ताडयित्वा स्वधेनूः प्राप्तवान् आसीत् ।

मोहनः विनोदप्रियः आसीत् । धेनूनां वृषभाणां च चारणसमये वृषभयोः परस्परं युद्धं पश्यन् आनन्दम् अनुभवति स्म मोहनः । यः वृषभः जयं प्राप्नोति, तस्य शृङ्गयोः पुष्पं स्थापयति स्म । यः वृषभः पराजितः भवति, तस्य शृङ्गयोः तृणग्रन्थिं बध्नाति स्म । कदाचित् सः घोषयति स्म यत् - मम वृषभेण सह अन्यः यः कोऽपि वृषभः युद्धं कर्तुं शक्नोति । एतस्यां स्पर्धायां यः वृषभः विजयी भविष्यति, तस्य शृङ्गयोः सुवर्णकवचं कारयामि इति ।

ऐडापर्वते मोहनः यदा धेनूः चारयति स्म, तदा देवलोके काचित् घटना प्रवृत्ता । देवलोके कदाचित् कस्यचित् विवाहः प्रचलति स्म । विवाहार्थं बहवः जनाः तत्र सम्मिलिताः आसन् । तस्मिन् समये कलहप्रियानामिका काचित् देवता आगतानां पुरतः एकं सुवर्णफलं स्थापितवती । फलस्य उपरि 'सौन्दर्यवत्यै' इति लिखितम् आसीत् । विवाहार्थम् अतिथिरूपेण आगताः तिस्रः देवताः तत् फलं प्राप्तुम् इष्टवत्यः । तासां नाम भूपुत्री, बुद्धिमती, कामिनी चेति ।

तिसृषु स्पर्धा आरब्धा । तासु तिसृषु

अतीव सौन्दर्यवती का इति वक्तुं कोऽपि न शक्तः । अतः ताः तिस्रः अपि देवनाथसमीपं गत्वा तं प्रार्थितवत्यः यत् - अस्मासु तिसृषु अतीव सौन्दर्यवती का इति निर्णयं वदतु कृपया इति ।

तदा देवनाथः ताः उद्दिश्य उक्तवान् - "भवतीषु का सौन्दर्यवती इति निर्णयं कर्तुम् अहम् अशक्तः अस्मि । मोहननामकः कश्चित् ऐडापर्वते तिष्ठति । तत्र गत्वा तं प्रार्थयन्तु । सः भवतीनां समस्यां परिहरिष्यति" इति ।

तिस्रः अपि देवताः देवनाथस्य वचनम् अङ्गीकृत्य ऐडापर्वतं गत्वा सुवर्णफलं मोहनाय यच्छन्त्यः उक्तवत्यः - "मोहन ! भवान् अतीव सुन्दरः बुद्धिमान् च । अस्मासु तिसृषु या सौन्दर्यवती इति भवान् चिन्तयति तस्यै एतत् सुवर्णफलं ददातु । एषा देवनाथस्य आज्ञा" इति ।

तदा मोहनः मुग्धताम् अभिनयन् उक्तवान् - "अहं तु धेनूनां चारकः सामान्यः मनुष्यः । सौन्दर्यविषये अहं किं जानामि ? यस्य सौन्दर्यप्रज्ञा लेशमात्रम् अपि नास्ति, तेन सौन्दर्यनिर्णयः कथं वा कर्तुं शक्यते ?" इति

"एषा देवनाथस्य आज्ञा । भवान् तस्याः आज्ञायाः उल्लङ्घनं करोति चेत् भवतः एव हानिः" इति मोहनं भाषितवत्यः ताः देवताः ।

तदा मोहनः उक्तवान् - "भवतु तर्हि । भवतीषु सौन्दर्यवती का इति निर्णयं करिष्यामि अहम् । किन्तु मम निर्णयः



भवतीभिः सन्तोषेण अङ्गीकरणीयः । ये पराजयं प्राप्नुतः ते कुपिते न भवेताम्" इति ।

मोहनस्य वचनं तिस्रः अपि अङ्गीकृतवत्यः ।

मोहनः पुनः उक्तवान् - "भवत्यः तिस्रः अपि एकत्र एव तिष्ठन्ति चेत् अहं कामपि सम्यक् परीक्षितुं न शक्नोमि । अतः भवत्यः दूरं गत्वा एकैकशः मम समीपम् आगच्छन्तु" इति ।

तिस्रः अपि मोहनस्य वचनम् अङ्गीकृत्य ततः दूरं गतवत्यः ।

प्रथमं भूपुत्री मोहनस्य समीपम् आगतवती । मोहनः सूक्ष्मरूपेण तस्याः सौन्दर्यं परिशीलितवान् । तदा सा मोहनम्

उक्तवती - 'मोहन ! भवान् सुवर्णफलं यदि मङ्गं दास्यति, तर्हि भवत्सदृशः जगति कोऽपि न स्यात्, तारुणं सुन्दरं बुद्धिमन्तं च करिष्यामि भवन्तम्। येन केनापि सह भवान् युद्धं करोति चेदपि भवान् एव विजयी यथा भवेत्, तथा करिष्यामि' इति।

भूपुत्र्याः एतत् वचनं श्रुत्वा मोहनः पृष्ठवान् - 'अहं तु सामान्यः गोपालकः। तारुणस्य मम युद्धं किमर्थम् ? विजयोत्सवः च किमर्थम् ?' इति।

तदनन्तरं भूपुत्री ततः गतवती। बुद्धिमती आगतवती। बुद्धिमती मोहनम् उक्तवती - 'मोहन ! अस्मासु तिसृषु अहम् एव सौन्दर्यवती इति यदि भवान् निर्णयं करोति, तर्हि भवन्तं समग्रस्य आसियादेशस्य राजानं करोमि। जगति भवत्सदृशः धनिकः

अन्यः यथा न स्यात्, तथा वरेण अनुगृह्णामि' इति।

तदा मोहनः बुद्धिमतीम् उद्दिश्य उक्तवान् - 'अहम् उत्कोचं स्वीकृत्य भवतीनां समस्यां परिहर्तुं न इच्छामि' इति।

अनन्तरं बुद्धिमती ततः गतवती। कामिनी आगतवती। कामिनी मोहनं पश्यन्ती उक्तवती - 'मोहन ! अतीव सुन्दरः अस्ति भवान्। भवादृशः सुन्दरः फ्रिजियादेशे एव नास्ति। तारुणस्य सुन्दरस्य भवतः पत्नी स्पाटदेशस्य राजकुमारी भुवनसुन्दरी भवेत्। यतः भुवनसुन्दरीसदृशी अन्या सुन्दरी भूलोके एव नास्ति' इति।

'भुवनसुन्दरी इति नाम इतः पूर्वं न श्रुतम् एव खलु मया !' इति उक्तवान्



मोहनः ।

“न श्रुतं वा ? ग्रीकदेशस्य बहवः राजकुमाराः भुवनसुन्दरीं परिणेतुम् इच्छन्तः तस्याः समीपं गतवन्तः । किन्तु सा आगतेषु राजकुमारेषु कमपि न इष्टवती । अपि तु राराजस्य अनुज्ञं प्रतापं परिणीतवती । यदि भवान् इच्छति, तर्हि तां प्राप्नोतु” इति उक्तवती कामिनी ।

तदा मोहनः - “सा इदानीं विवाहिता खलु ! अतः अहं कथं वा तां प्राप्तुं शक्याम ?” इति पृष्टवान् ।

मोहनस्य वचनं श्रुत्वा कामिनी मन्दहासपूर्वकम् उक्तवती - “भुवनसुन्दरी विवाहिता चेदपि चिन्ता नास्ति । भवतः दर्शनमात्रेण भवतः विषये तस्यां यथा अनुरागः उत्पद्येत, तथा कारिष्यामि अहम् ।

अनन्तरं सा पतिं, गृहं च विस्मृत्य भवतः समीपम् आगमिष्यति” इति ।

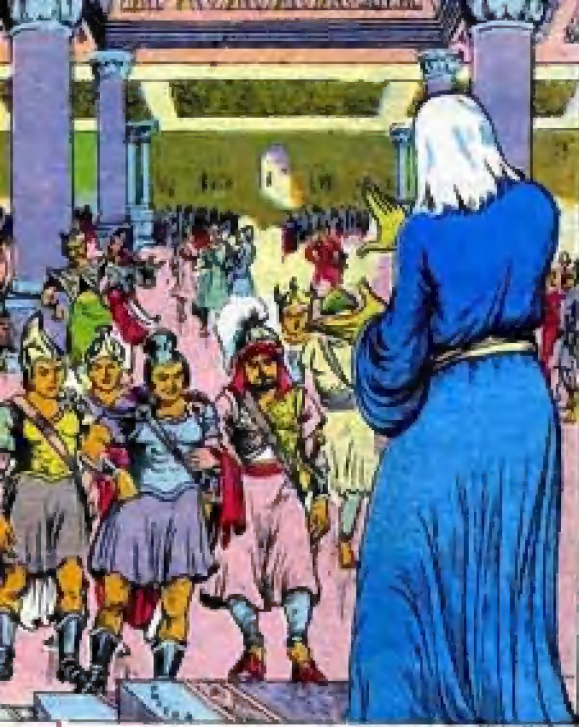
“वस्तुतः सा तावत् सौन्दर्यवती वा ? भवती ‘भुवनसुन्दरीं मदीयां करोमि’ इति शपथं करोति वा ?” इति पृष्टवान् ।

मोहनस्य वचनम् अङ्गीकृत्य कामिनी तथैव शपथं कृतवती ।

मोहनः सुवर्णफलं कामिन्यै दत्तवान् ।

भुवनसुन्दरी वस्तुतः सौन्दर्यवती, सुकोमला च । तस्याः पिता देवनाथः, माता च मानिनी । भुवनसुन्दरी कस्याञ्चित् हस्याः अण्डात् बहिः आगता इति काचित् प्रतीतिः अस्ति । स्पार्टा राजः मर्दनः भुवनसुन्दरीं बाल्यतः अपि पोषितवान् । यदा सा प्राप्तयौवना जाता, तदा ग्रीकदेशस्य बहवः





राजकुमाराः तां परिणेतुम् इच्छन्तः स्पाट्देशम् आगतवन्तः । तथा आगतेषु देवमयः, प्रतापः, भूदेवः, रूपधरः च अन्यतमाः । एतेषु चतुर्षु त्रयः उपायनानि आनीय भुवनसुन्दर्यै दत्तवन्तः । किन्तु रूपधरः एकः एव रिक्तहस्तः सन् आगतवान् आसीत् ।

तावत्सु जनेषु कस्मै भुवनसुन्दरी दातव्या ? केन सह तस्याः विवाहः कारणीयः ? इति चिन्ता आरब्धा मर्दनस्य । येन केनचित् सह विवाहः कार्यते चेदपि अन्ये कोलाहलं कुर्वन्ति एव । एवं चिन्तयन् मर्दनः पुत्रीं कस्मै ददामि इत्यपि न उक्तवान् । तैः आनीतानि उपायनानि अपि न स्वीकृतवान् ।

‘मया तु कथञ्चिदपि भुवनसुन्दरी न प्राप्यते’ इति आरम्भतः अपि चिन्तयन् आसीत् रूपधरः । अतः सः महाराजस्य मर्दनस्य समीपं गत्वा उक्तवान् - “भवान् इदानीं समस्यातः बहिः आगन्तुं प्रयतमानः अस्ति इति अहं जानामि । भवान् मम एकं साहाय्यं करोतु । प्रत्युपकाररूपेण अहं भवतः समस्यायाः परिहारोपायं सूचयिष्यामि” इति ।

तदा राजा मर्दनः पृष्ठवान् - “भवते कीदृशं साहाय्यं करवाणि अहम् ? भवान् च केन प्रकारेण मम समस्यां परिहरिष्यति ?” इति ।

मर्दनस्य वचनं श्रुत्वा रूपधरः उक्तवान् - “भवतः सहोदरस्य चन्द्रदत्तस्य पुत्रीं पद्ममुखीं मह्यं दत्त्वा विवाहं कारयतु । भवतः पुत्र्याः विवाहं येन केनापि सह करोति चेदपि अन्ये कोलाहलं यथा न कुर्युः तथा अहं कञ्चन उपायं वदिष्यामि” इति ।

तदा मर्दनः उक्तवान् - “उपायं वदतु तावत् । पद्ममुख्या सह भवतः विवाहकरणं मम दायित्वम्” इति ।

‘तर्हि एवं करोतु भवान् । भुवनसुन्दरीं परिणेतुं ये राजकुमाराः आगताः सन्ति, तान् सर्वान् एकत्र आहूय, तेषां द्वारा प्रतिष्ठा कारणीया यत् - भुवनसुन्दरी यं परिणेष्यति, विवाहानन्तरं तस्य यदि कष्टकालः आपतति, तर्हि अन्ये सर्वे अपि तस्मिन् समये भुवनसुन्दर्याः पत्युः साहाय्यं कुर्युः इति । भवान् एवं करोति चेत् भुवनसुन्दर्याः

विवाहकार्यं विना विघ्नं प्रचलिष्यति” इति।

एषः उपायः मर्दनाय अरोचत । सः ग्रीक राजकुमारान् आहूय तान् उक्तवान् - “यद्यपि भवन्तः सर्वे अपि भुवनसुन्दरीं परिणेतुम् इच्छन्तः अत्र आगतवन्तः सन्ति । किन्तु सा भवत्सु कमपि एकं परिणेष्यति । सा यं परिणेष्यति, तस्य विषये अन्ये असूयाविष्टाः सन्तः विपदम् उत्पादयेयुः । तथा यदि प्रवर्तते तर्हि भवद्भिः सर्वैः अपि भुवनसुन्दर्याः पत्युः साहाय्यं करणीयम् । एतद्विषये भवन्तः प्रतिज्ञां कुर्वन्तु । अनन्तरम् अहं तस्याः पतिं चिनोमि” इति ।

सर्वे अपि राजकुमाराः महाराजस्य मर्दनस्य वचनानुसारं प्रतिज्ञां कृतवन्तः । अनन्तरं मर्दनः भुवनसुन्दरीं प्रतापाय दत्त्वा विवाहं कारितवान् । केषाञ्चित् वर्षाणाम् अनन्तरं राजा मर्दनः दिवङ्गतः ।

भुवनसुन्दर्याः विवाहसमये एव स्पार्टादेशे रूपधर-पद्ममुख्याः विवाहः अपि सम्पन्नः । पद्ममुख्याः पिता चन्द्रदत्तः जामातरं रूपधरम् उक्तवान् - “वत्स ! अहं पुत्रीं विना

जीवितुं न शक्नोमि । अतः भवान् कृपया अत्रैव मम गृहे एव निवसतु” इति ।

किन्तु रूपधरः श्वशुरस्य वचनं तिरस्कृत्य पत्न्या सह रथम् आरुह्य इषाकां प्रति प्रस्थितः । तदा चन्द्रदत्तः रूपधरस्य रथम् अनुसृत्य धावन् उक्तवान् - “वत्से ! मा गच्छतु । कृपया अत्रैव तिष्ठतु” इति ।

श्वशुरस्य एतं व्यवहारं न इष्टवान् रूपधरः । सः पत्नीं पद्ममुखीम् उक्तवान् - “कीदृशः एषः भवत्याः पितुः विचित्रः व्यवहारः ? भवती इच्छति चेत् मया सह आगच्छतु । नो चेत् मां परित्यज्य भवत्याः पित्रा सहैव तिष्ठतु” इति ।

तदा पद्ममुखी स्वशिरसि विद्यमानेन अवगुण्ठनेन मुखम् आच्छादितवती ।

पुत्र्याः पद्ममुख्याः व्यवहारेण चन्द्रदत्तः अवगतवान् यत् - दोषः मदीयः एव, पत्न्या सह गमनम् एव पत्न्याः धर्मः इति ।

एषा घटना यत्र प्रवृत्ता, तस्मिन् स्थले चन्द्रदत्तः स्वपुत्र्याः शिलाप्रतिमां कारयित्वा प्रतिष्ठापितवान् अस्ति । (अनुवर्तते)



मुहूर्तानुगुणं कार्यम्

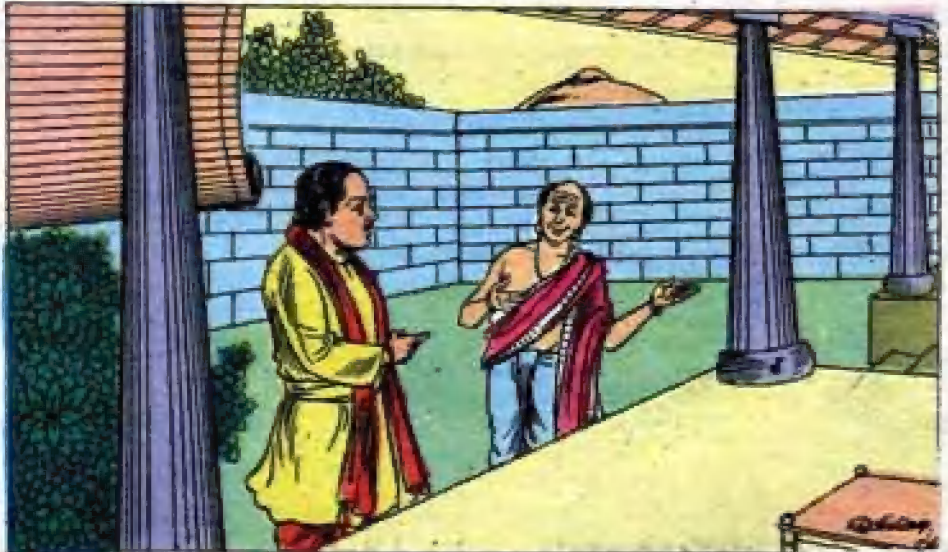
गोविन्दः गणेशपुरे निवसति । शकुनमुहूर्तादिविषये गोविन्दस्य महान् विश्वासः ।

कदाचित् गोविन्दः श्रेष्ठकार्यनिमित्तं गृहात् बहिः आगतवान् । तावता कुतश्चित् शुवशब्दः श्रुतः । गोविन्दः श्रुवकर्तारं मनसि एव भपन् बहिर्गमनं व्याधिप्य गृहस्य अन्तः गन्तुम् उद्युक्तः । तावता कुत्रापि गच्छन्तं प्रतिवेशिनं परमेश्वरशास्त्रिणं दृष्ट्वा गोविन्दः आश्चर्यचकितः । यतः परमेश्वरशास्त्री लघुकार्यम् अपि मुहूर्तं दृष्ट्वा एव करोति । प्रयाणार्थं प्रस्थानम् अपि मुहूर्तानुगुणम् एव । तादृशः श्रुवध्वनिम् अपि उपेक्ष्य प्रस्थितवान् इति कारणतः एषः उत्तममुहूर्तः स्यात् इति विचिन्त्य गोविन्दः तत्क्षणम् एव कार्यार्थं प्रस्थितवान् एव ।

तस्मिन् दिने गोविन्देन उद्दिष्टं कार्यं यशस्वि जातम् । एतस्मात् सन्तुष्टः गोविन्दः प्रश्नं विना अपि उत्तमं मुहूर्तं ज्ञापितवते परमेश्वरशास्त्रिणे कृतज्ञतां समर्पयितुं तस्य गृहं गतवान् ।

गोविन्दस्य वचनं श्रुत्वा परमेश्वरशास्त्री आश्चर्येण उक्तवान् - 'एतेषु दिनेषु मम विस्मरणशीलता अधिका जाता अस्ति । बुद्धिः तीक्ष्णा नास्ति । अतः श्रुवशब्दः न श्रुतः मया । तथापि तस्मिन् समये मया प्रस्थितं प्रमुखकार्यार्थं तु न । गृहस्य पार्श्वे एव निरन्तरं भपन् आसीत् कश्चन शुनकः । तं शुनकं दूरं प्रेषयितुं गतवान् अहम् । राहुकाले अपि प्रमुखकार्यार्थं प्रस्थानं मन्दमत्तयः एव कुर्वन्ति' इति ।

परमेश्वरशास्त्रिणः एतात् वचनं श्रुत्वा गोविन्दः आश्चर्यचकितः । अनन्तरं सः कदापि शकुनमुहूर्तादिविषये विश्वासं न कृतवान् ।





पतिव्रतायाः माहात्म्यम्

‘कार्ये सिद्धिः कथञ्चित् प्राप्तव्या एव’
इति निश्चित्य त्रिविक्रमः पुनरपि
वृक्षसमीपं गतवान् । वृक्षम् आरुह्य शाखायां
लम्बमानं शवं स्कन्धे आरोप्य अधः
आगतवान् । मौनं श्मशानाभिमुखं
प्रस्थितवान् च । तदा शवान्तर्गतः वेतालः
अवदत् - “अये राजन् ! अस्मिन् भीकरे
श्मशाने भवान् परिश्रमजनकानि कष्टानि
अपि अतीव सहनया सहते इति यत्, तेन अहं
चिन्तयामि ‘भवता साधनीयं कार्यम् अत्यन्तं
श्रेष्ठम्’ इति । केचन स्वार्थं साधयितुम्
इच्छन्तः श्रेष्ठानां सर्वसङ्गपरित्यागिनां
महानुभावानां, मोक्षार्थं प्रयतमानानां
तपस्विनां च व्रतभङ्गं कुर्वन्ति । महानुभावः
भवान् तादृशीं स्थितिं न प्राप्नुयात्, अन्येषाम्
उपहासपात्रं च न भवेत् । तदर्थं भवता
अत्यन्तं जागरूकेण भवितव्यम् इति
स्मारयितुम् अहं तपस्वि-पतिव्रतासम्बद्धां
काञ्चित् कथां श्रावयामि । श्रद्धया शृणोतु”

वेतालकथा



इति ।

अनन्तरं वेतालेन कथा आरब्धा -

हेमगिरिनामके ग्रामे धीरनामकः युवकः आसीत् । मातापितृभ्याम् अत्यन्तं प्रीत्या पालितः धीरः सर्वाणि दुर्व्यसनानि अभ्यस्तवान् आसीत् । पुत्रस्य धीरस्य व्यवहारेण तस्य मातापितरौ यद्यपि अतीव खिन्नौ, तथापि तौ समाधानं प्राप्तवन्तौ यत् - पुत्रः यदा प्रौढः भविष्यति, तदा स्वदायित्वम् अवगत्य गुणवान् भवेत् इति । किन्तु धीरः यथा यथा प्रौढत्वं प्राप्तवान्, तथा तथा दुरभ्यासानां दासः जातः । दुर्व्यसनानां कारणतः धीरः पित्रार्जितायाः सम्पत्तेः अपि व्ययीकरणम् आरब्धवान् ।

यदि पुत्रस्य विवाहः कियते, तर्हि सः

दुर्व्यसनानि परित्यज्य गुणवान् भवेत् इति चिन्तितवन्तौ धीरस्य मातापितरौ । किन्तु धीरस्य स्वभावं व्यवहारं च ये धनिकाः जानन्ति, ते धीराय कन्यां दातुं सर्वथा न इच्छन्ति । दरिद्राः कन्यां दातुम् इच्छन्ति चेदपि तादृश्याः कन्यायाः सहनागुणः समजनस्वभावः च आवश्यकः ।

हेमगिरिसमीपे रामपुरनामकः ग्रामः अस्ति । तस्मिन् ग्रामे कुचेलनामकः कश्चित् दरिद्रः अस्ति । तस्य पुत्री शान्ता । शान्ता गुणवती, सहनामयी च । बाल्यतः अपि पुराणकथाः पठितवत्यां शान्तायां परोपकारबुद्धिः अधिका आसीत् ।

कदाचित् शान्तायाः माता कान्ता अनारोग्यपीडिता अभवत् । कान्तायाः चिकित्सां कारयितुं कुचेलस्य समीपे धनं नास्ति । सः स्वग्रामे बहुजनान् पत्न्याः चिकित्सार्थं धनं ऋणरूपेण पृष्ठवान् । किन्तु न कोऽपि कुचेलाय ऋणं दत्तवान् । एतस्मात् खिन्नः कुचेलः 'दैवसङ्कल्पः यथा अस्ति तथा भवतु' इति चिन्तयन् मौनम् आश्रितवान् । किन्तु शान्ता चिन्तितवती यत् - कथञ्चित् मातुः चिकित्सा कारणीया इति ।

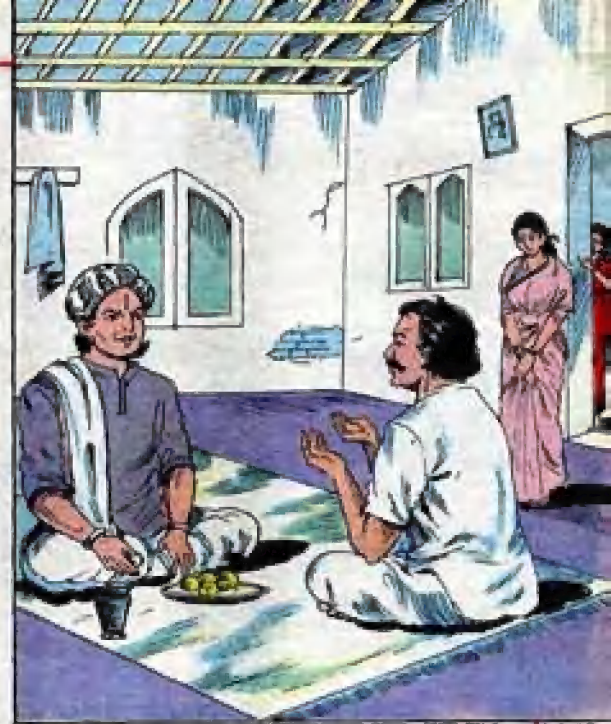
रामपुरस्य भूस्वामिनः पत्नी वर्षद्वयात् पूर्वं केनचित् रोगेण पीडिता आसीत् । तस्मिन् समये कुचेलस्य पुत्री शान्ता भूस्वामिनः गृहे एव स्थित्वा तस्य पत्न्याः उपचारं कृतवती आसीत् । एतस्मात् सन्तुष्टा भूस्वामिनः पत्नी शान्ताम् उक्तवती आसीत् - "भवती बहुधा माम् उपकृतवती अस्ति ।

न्यूनातिन्यूनम् एकवारं वा भवत्याः साहाय्यं कृत्वा ऋणमुक्ता भवितुम् इच्छामि अहम् । अतः यदि भवत्याः कष्टम् आपतति, तर्हि निस्सङ्कोचम् अत्र आगत्य मां साहाय्यं प्रार्थयतु । अहम् अवश्यं भवत्याः आशयं पूरयिष्यामि” इति ।

पूर्वतनीम् एतां घटनां स्मरन्ती शान्ता साहाय्यं प्रार्थयितुं भूस्वामिनः गृहं गतवती । तस्मिन् समये तत्र धीरस्य पिता आसीत् । धीरस्य पिता शान्तायाः कुलगोत्रादिकं ज्ञात्वा चिन्तितवान् यत् - एषा मम स्नुषा भवति चेत् पुत्रस्य स्वभावे परिवर्तनं भवेत् इति । शान्तायाः मातुः अनारोग्यम् इति ज्ञात्वा धीरस्य पिता एव चिकित्सां कारितवान् ।

अनन्तरं सः कुचेलेन यस्मात् यस्मात् ऋणं स्वीकृतम् आसीत् तेभ्यः सर्वेभ्यः अपि ऋणं प्रत्यर्प्य कुचेलं ऋणमुक्तं कृतवान् । अनन्तरं च कुचेलम् उक्तवान् - “चत्वारि एकरपरिमिता मदीया भूमिः अस्ति । तस्यां भूमौ भवान् कृषिकार्यं कुर्वन् लाभं प्राप्नोतु । भवतः पुत्रीं शान्तां मम स्नुषां करोतु” इति ।

धनिकः कश्चित् स्वयम् आगत्य कन्यां प्रार्थयते इति यत्, तेन कुचेलः धीरस्य स्वभावादिविषये सन्देहं प्राप्य तस्य विषये धीरस्य पितरं पृष्ठवान् । तदा सः धीरस्य स्वभावादिविषये वस्तुस्थितिं निवेद्य उक्तवान् - “भवतः पुत्री यदि मम पुत्रं परिणयेष्यति, तर्हि भवान् दारिद्र्यात् मुक्तः



भविष्यति । अतः एतत् कृपया मा तिरस्करोतु” इति ।

शान्तायाः मनोभावम् अज्ञात्वा कुचेलः एतं सम्बन्धम् अङ्गीकर्तुं न सिद्धः आसीत् । किन्तु शान्ता मातापित्रोः दारिद्र्य-निवारणार्थम् एतं सम्बन्धम् अङ्गीकृतवती । शीघ्रातिशीघ्रम् एव धीर-शान्तयोः विवाहः सम्पन्नः ।

स्वविवाहः इति ज्ञात्वा धीरः पूर्वं भीतः आसीत् । तस्य भीतेः कारणम् आसीत् यत् पत्नी मां पुनः पुनः पीडयेत् इति । किन्तु शान्तायाः व्यवहारः भिन्नः एव आसीत् । सा पतिं धीरं कमपि प्रश्नं न पृच्छति स्म । सा पतिं देवं मत्वा आदरेण पश्यति स्म ।

धीरस्य मातापित्रोः तृप्तिदायकः न



आसीत् शान्तायाः व्यवहारः । तौ कदाचित् शान्ताम् उपदिष्टवन्तौ - “भवती पत्युः दुर्व्यवहारस्य उपेक्षां मा करोतु । तेन सः शान्तं वाममार्गम् एव आश्रयेत् । अतः भवती कृपया तं सन्मार्गं सद्व्यवहारं च बोधयतु” इति ।

तदा शान्ता उक्तवती - “यद्यपि भवन्तौ ज्येष्ठौ, भवतोः वचनं मया न उल्लङ्घनीयं च, तथापि भवतोः अपेक्षया अपि मम दृष्ट्या ज्येष्ठः श्रेष्ठः च मम पतिः । सः मम देवसमानः । तस्य इच्छायाः विरुद्धं व्यवहर्तुं सर्वथा न इच्छामि अहम् । एतं विषयं विहाय अन्यत् किमपि अस्ति चेत् वदन्तु, अहम् अवश्यं करोमि” इति ।

कानिचन दिनानि अतीतानि । धीरः

अनारोग्येण शय्याम् आश्रितवान् । वैद्यः धीरं परीक्ष्य उक्तवान् - “दुर्व्यसनकारणतः एषः अस्वस्थः जातः अस्ति । केनापि औषधेन एषः स्वस्थः न भविष्यति । इतः परम् आजीवनम् एतस्य स्थितिः एवमेव” इति ।

एतत् श्रुत्वा धीरस्य मातापितरौ अतीव खिन्नौ ।

कदाचित् कश्चित् संन्यासी धीरस्य मातापितरौ उक्तवान् - “भवतोः स्नुषा यदि पतिव्रता स्यात्, तर्हि भवतोः पुत्रः निश्चयेन अनारोग्यात् मुक्तः भविष्यति । हेमगिरिसमीपस्थे अरण्ये रामतटाकः अस्ति । रामतटाकस्य तीरे कश्चन आम्रवृक्षः अस्ति । तस्य वृक्षस्य मूलं यं कमपि व्याधिं शमयितुं समर्थम् अस्ति” इति ।

तदा धीरस्य पिता उक्तवान् - “मम स्नुषा पतिव्रता अस्ति । तद्विषये सन्देहः एव नास्ति । अहम् इदानीम् एव रामतटाकतीरं गत्वा आम्रवृक्षस्य मूलम् आनेष्यामि” इति ।

एतत् श्रुत्वा संन्यासी मन्दहासपूर्वकम् उक्तवान् - “तस्य आम्रवृक्षस्य मूलम् अन्यैः न स्प्रष्टव्यम् । धीरस्य पत्न्या एव पतिं कण्डोले उपवेश्य, तं च कण्डोलं शिरसि धृत्वा अन्येषां साहाय्यं विना रामतटाकः गन्तव्यः । रामतटाकतीरे यः आम्रवृक्षः अस्ति, तस्य वृक्षस्य अधः कश्चित् मुनिवर्यः तपः कुर्वन् भवति । तस्य मुनिवर्यस्य तपःशक्त्या एव आम्रवृक्षस्य मूलं शक्तिमत् जातम् अस्ति । भवतः स्नुषा तम् आम्रवृक्षं समूलम् उत्पाट्य, तस्य वृक्षस्य मूलं धीराय दद्यात् ।

धीरः तस्य मूलस्य चर्वणं करोति चेत् सः
अनारोग्यात् मुक्तः भविष्यति" इति ।

धीरस्य मातापितरौ गृहं गत्वा एतं विषयं
शान्तां निवेदितवन्तौ । सा पतिं कण्डोले
उपवेश्य, तं कण्डोलं च शिरसि धृत्वा महता
कष्टेन अरण्यं प्रविष्टवती । किन्तु सा बहुदूरं
गन्तुं न शक्तवती । तस्याः शिरसि विद्यमानः
कण्डोलः पतितः, स्वयम् अपि पतितवती
सा । सा देवं प्रार्थितवती - "भक्तवत्सल !
यदि अहं पतिव्रता स्यां, तर्हि मम पत्युः
कोऽपि अपायः न भवतु" इति ।

निमेषद्वयानन्तरं पत्युः आह्वानं श्रुत्वा
शान्ता नेत्रे उन्मीलितवती । पतनेन अपि
पत्युः अपायः कोऽपि न जातः इति मनसः
समाधानं प्राप्य सा उत्थितवती ।

अतीव निष्कात्या उत्पातुम् अशक्तः
धीरः शान्ताम् उक्तवान् - "अहम् अतीव
पिपासितः अस्मि । इक्षुरसः पातव्यः इति
इच्छा भवति मम" इति ।

शान्ता तं प्रदेशं परितः अवलोकितवती ।
महत् आश्चर्यम् अभवत् तस्याः । यतः
मूर्च्छया यत्र सा पतितवती आसीत्,
तस्मान्निभ्रम् आसीत् एतत् स्थलम् । तत्र
समीपे एव कश्चन तटाकः आसीत् ।
तटाकतीरे कश्चन आम्रवृक्षः आसीत् । एतत्
दृष्ट्वा शान्ता चिन्तितवती - 'एषः एव
रामतटाकः स्यात् । दैवेन एव आवाम् एतं
प्रदेशं प्रापितौ स्याव' इति ।

अनन्तरं शान्ता परशुं गृहीत्वा
वृक्षच्छेदनार्थं वृक्षसमीपं गतवती । तावता



तया वृक्षस्थानि सुवर्णवर्णीयानि आम्रफलानि
दृष्टानि । वृक्षः फलैः पूर्णः अस्ति इति शान्ता
सन्तोषम् अनुभवन्ती एकम् आम्रफलम्
उत्पाटितवती । तत्क्षणे एव तत् फलं
सुवर्णपात्ररूपेण परिणतम् अभवत् । तस्मिन्
पात्रे कश्चन द्रवः आसीत् । तं द्रवम् आधाय
शान्ता ऊहितवती - सः इक्षुरसः इति ।

शान्ता सुवर्णपात्रस्थम् इक्षुरसं पत्ये
धीराय दत्त्वा वृक्षच्छेदनार्थम् उद्युक्ता ।
तावता 'तिष्ठतु' इति कठोरं वचनं श्रुत्वा सा
परितः दृष्टवती ।

कश्चित् मुनिवर्यः तया दृष्टः । सः शान्ताम्
उद्दिश्य - "फलभरितम् अपि वृक्षं
च्छेदयितुम् उद्युक्ता भवती का ?" इति
कठोरं पृष्टवान् ।



शान्ता मुनिवर्यं पत्युः विषयं निवेदितवती । मुनिवर्यः सर्वं श्रुत्वा शान्ताम् उक्तवान् - “कश्चित् संन्यासी असत्यं किमपि उक्त्वा भवतीं प्रेरितवान् अस्ति । किन्तु तस्य वचने विश्वस्य भवती एतावद्दूरम् आगतवती इति यत्, तत् तु मूर्खता एव । भवती इतः निर्गच्छतु” इति ।

तदा शान्ता मुनिवर्यम् उद्दिश्य - “एतावद्दूरम् आगत्य अपि कार्यसाधनं विना प्रतिगमनं सर्वथा न इच्छामि अहम् । कार्यसिद्धिं प्राप्य एव इतः निर्गच्छामि अहम्” इति वदन्ती वृक्षच्छेदनार्थं परशुम् उन्नीतवती ।

एतत् श्रुत्वा मुनिवर्यः कोपेन उक्तवान् - “एतस्य वृक्षस्य अधः तपः कुर्वन् कश्चित्

मुनिवर्यः अस्ति इति संन्यासिना यत् उक्तम् आसीत्, सः मुनिः अहम् एव । मम तपोबलेन एव खलु वृक्षस्य मूलम् अपूर्वशक्तिमत् जातम् अस्ति ? मां धिक्कृत्य भवती एतस्य वृक्षस्य च्छेदनं कर्तुं सर्वथा न शक्नोति” इति ।

अपरक्षणे एव शान्तायाः हस्ते विद्यमानः परशुः वायौ उड्डयनम् अकरोत् । एतत् दृष्ट्वा मुनिवर्यः उच्चैः हसितवान् ।

तदा शान्ता मुनिवर्यस्य समीपं गत्वा तं नमस्कृत्य प्रार्थितवती - “यदि भवान् तपस्वी स्यात्, भवति अपारा शक्तिः च स्यात्, तर्हि मम पतिम् अनुगृह्णातु । अनारोग्यात् तं मुक्तं करोतु । अन्यथा मम कार्यस्य विघ्नं मा आचरतु भवान्” इति ।

एतत् श्रुत्वा मुनिवर्यः गाम्भीर्येण उक्तवान् - “भवत्याः पतिः पापी अस्ति । आत्मना कृतस्य पापस्य फलम् अनुभवन् अस्ति सः । अतः तस्य रक्षणं दैवेन अपि अशक्यम् एव” इति ।

तदा शान्ता - “यदि अहं पतिव्रता स्यां, तर्हि देवः मम साहाय्यं करोतु” इति उक्तवती ।

अपरक्षणे एव वायौ ड्यमानः परशुः आगत्य स्वयम् एव वृक्षस्य च्छेदनम् आरब्धवान् । वृक्षच्छेदनस्य स्थगनार्थं मुनिः मन्त्रपठनं बहुधा कृतवान् । किन्तु मन्त्रपठनेन न किमपि प्रयोजनं जातम् ।

किञ्चित्कालानन्तरम् आस्रवृक्षः पतितः । शान्ता आस्रवृक्षस्य मूलमेकं तटाक-जलेन प्रक्षाल्य धीराय खादितुं दत्तवती ।

अपरक्षणे एव धीरः स्वल्पः जातः । धीरः शान्ता च मुनिवर्यं नमस्कृत्य ततः प्रस्थितवन्तौ ।

‘कस्याशित् सामान्यश्रियः पुरतः मम तपश्शक्तिः अर्पणीता जाता’ इति शिन्नः मुनिवर्यः तत्रैव उपविश्य रोदनम् आरब्धवान् ।

वेतालः एवं कथां समाप्य अवदत् - “अये राजन् ! धीरः मातापित्रोः हितवचनं तृणीकृत्य दुर्व्यसनी जातः । तस्य परिणामतः सः रोगपीडितः अभवत् । रोगपीडितं पतिम् उज्जीवयितुं, तन्नाम स्वकीयं स्वार्थं चिन्तयन्ती शान्ता आश्रमवृक्षस्य छेदनार्थम् उद्युक्ता अभवत् । किन्तु मुनिवर्यः तु स्वार्थरहितः सन् तपः कुर्वन् आसीत् । तादृशस्य तपोधनस्य शक्तिः शान्तायाः पुरतः किमर्थं निरूपयुक्ता जाता ? एषः विधिविलासः इति भावयति वा भवान् ? अथवा अत्र मानवबुद्धिशक्तिम् अतिरिच्य स्थितः सूक्ष्मांशः स्यात् वा ? एतेषां सन्देहानां समाधानं जानन् अपि यदि भवान् न वदेत्,

तर्हि भवतः शिरः सहस्रधा भग्नं भवेत्” इति ।

तदा मौनं स्थातुम् अशक्तः त्रिविक्रमः उक्तवान् - “पुराणकथाभिः श्रूयते यत् - भगवान् अपि पतिव्रताः जेतुं न शक्नोति इति । शान्ता पत्युः सुखम् इच्छति इति यत् तद्विषये स्वार्थसहिता एव स्यात् सा । किन्तु स्वकष्टं तृणाय भावयन्ती पत्युः हितार्थं परिश्रमं कृतवती सा श्रेष्ठा जाता । यस्य देवस्य दर्शनभाग्यम् एव न भवति, तादृशस्य सेवाकरणापेक्षया अपि प्रत्यक्षं दृश्यमानस्य मनुष्यस्य कष्टे ये सहभागिनः भवन्ति, ते श्रेष्ठाः । मुनिवर्यः अत्युत्तमं मानवजन्म प्राप्य अपि केवलं स्वमोक्षार्थं तपः आचरन् स्वार्थी जातः । आश्रयदाता आश्रमवृक्षः स्वतपोबलेन उज्जीवनीयः इत्यपि न चिन्तितवान् सः मुनिवर्यः । अतः एषः विधिविलासः इत्यपि वक्तुं न शक्यते” इति ।

एवं राज्ञः मौनभङ्गः यदा जातः, तदा शवान्तर्गतः वेतालः ततः अदृश्यः भूत्वा यथापूर्वं वृक्षस्य शाखाम् अवलम्बितवान् ।



महानुभावः

हेमपुरे कस्मिंश्चित् मार्गे कश्चित् काचकवस्तूनां गोणी शिरसि स्थापयित्वा गच्छन् आसीत् । मार्गे गमनसमये शिलाखण्डेन तस्य पादः प्रहिितः अभवत् । अतः सः अधः पतितवान् । गोण्यां विद्यमानानि काचकवस्तूनि भग्नानि अभवन् । एतत् दृष्ट्वा जनाः सहानुभूतिं प्रकटयन्तः तस्य समीपम् आगतवन्तः ।

तावता कश्चन अग्रे गत्वा - "भवतः काचकवस्तूनि सर्वाणि भग्नानि खनु । अतः भवतः गृहस्वामी अवश्यं भवन्तं तर्जयति एव । एतेषां वस्तूनां मूल्यं भवतः वेतनतः स्वीकृत्य, भवतः वेतनं न्यूनीकरोति एव । अतः वयं सर्वे एकैकं रूप्यकं दद्यः । तेन धनेन भवान् पुनः वस्तूनि क्रीत्वा गृहं गच्छतु" इति उक्त्वा एकं रूप्यकं तस्मै दत्त्वा अग्रे गतवान् ।

एतत् दृष्ट्वा तत्र सम्मिलिताः सर्वे अपि एकैकं रूप्यकं दत्तवन्तः । सर्वैः दत्तेन धनेन काचकवस्तूनि केतुम् इच्छन् सः सेवकः समीपस्थम् आपनं गतवान् । तदा तत्र सम्मिलितेषु कश्चित् तं काचकगोणीवाहकं सेवकं पृष्ठवान् - "भवतः स्वामी कः ?" इति ।

तदा सः उक्तवान् - "सः एव महानुभावः मम स्वामी, यः आरम्भे एकं रूप्यकं मह्यं दत्त्वा गतवान्" इति ।

एतत् श्रुत्वा जनाः आश्चर्यचकिताः ।



चन्दमामानुबन्धः-७२

अस्मदेशीया वृक्षसम्पत् -

अशोकवृक्षः

रामायणकथाभिः ज्ञायते यत् - रावणः सीताम् अपहृत्य लङ्कां नीत्वा अशोकवृक्षस्य अधः तां स्थापितवान् इति । हनूमान् सर्वत्र सीताम् अन्विष्यन् लङ्कां गत्वा अशोकवनस्य अधः उपविष्टां सीतां दृष्टवान् । अतः एतम् अशोकवृक्षं पवित्रं मन्यन्ते भारतीयाः ।

गौतमबुद्धः लुम्बिनीवने कस्यचित् अशोकवृक्षस्य अधः मातुः मायादेव्याः गर्भतः जन्म प्राप्तवान् इति श्रूयते । अशोकमहाराजः तस्मात् अशोकवृक्षात् एकां शाखां स्वीकृत्य श्रीलङ्कायाः अनुराधापुरं प्रेषयित्वा, तत्र च ताम् आरोपितवान् । सः अशोकवृक्षः लङ्कायाम् अद्यापि जीवति । एवरूपेण बौद्धाः अपि अशोकवृक्षं पवित्रं मन्यन्ते ।

अशोकवृक्षाः जलप्रदेशेषु अधिकतया वर्धन्ते । अलङ्कारार्थम् एते वृक्षाः वर्धन्ते । एते वृक्षाः सामान्यतः १० मीटरपरिमितं वर्धन्ते । लघुलघुशाखायुतानाम् एतेषां पर्णाणि गुल्मरूपेण भवन्ति । सर्वदा हरितायमानाः एतेषां वृक्षाणां शाखाः स्पूलपर्णानां कारणतः भारवशात् अवनताः भवन्ति । वृक्षस्य मध्यभागः वक्रतां विना रट्टं तिष्ठति । एतेषां पुष्पाणि गुच्छरूपेण भवन्ति । पुष्पाणि आरम्भे पीतवर्णीयानि भवन्ति, अनन्तरं केसरवर्णतां प्राप्य, ततश्च रक्तवर्णतां प्राप्नुवन्ति ।

अशोकपुष्पाणि पूजार्थम् उपयुज्यन्ते । औषधनिर्माणार्थम् अपि अशोकपर्णानां पुष्पाणां च उपयोगः विशेषतः क्रियते ।



सुप्रसिद्धाः मतग्रन्थाः



सिक्खमतसंस्थापकः गुरुनानाकवर्यः
उपरि उक्तान् विषयान् बोधितवान् ।

भगवान् गुरुनानाकवर्यम् आशिषा
अनुगृह्यन् एवं बोधितवान् - "ये भवतः
अनुग्रहपात्राणि भविष्यन्ति, ते ममापि
अनुग्रहपात्राणि एव । अहम् एव परमेश्वरः ।
अहम् एव सृष्टिकर्ता । भवान् च गुरुः" इति ।

अङ्गदः, अमरदासः, रामदासः च
गुरुनानाकवर्येण बोधितानां विषयाणां प्रचारं
कृतवन्तः । तेषाम् अनन्तरकाले आगतः गुरुः
अर्जुनः (१५६३ - १६०६) स्वपूर्वजानां
गुरुणां सूत्रैः सङ्कलय्य स्वकीयान् विचारान्
अपि योजयित्वा एकं ग्रन्थं रचितवान् । सः
एव सिक्खजनानां प्रथमः मतग्रन्थः

आदिग्रन्थः

देवः एकः एव ।

सः एव परमसत्यम् ।

सः एव सृष्टिकर्ता ।

भयद्वेषरहितः सः ।

सर्वान्तर्यामी सः ।

विश्वव्यापकः अपि सः एव ।

जनन-मरणरहितः सः श्रद्धया
पूजनीयः ।

कालात्पूर्वं सत्यम् अस्ति । यः कालः
चलति सः एव सत्यवान् ।

इदानीम् अपि सः एव सत्यवान् ।

सदापि सत्यम् एव नित्यम् ॥



‘आदिग्रन्थः’ । एषः ग्रन्थः १६०४ तमे वर्षे अमृतसरस्थस्य बालये स्थापितः अभवत् ।

‘ग्रन्थसाहेब’ नाम्ना निर्दिश्यमाने अस्मिन् ग्रन्थे न केवलं सिक्खगुरुभिः बोधिताः विषयाः सन्ति, अपि तु जैनादिमतसम्बद्धाः अनेकाः आध्यात्मिकसूक्तयः अपि सन्ति । तत्रत्यानि कीर्तनानि भक्तिप्रधानानि । तत्र उन्नताः तात्त्विकसिद्धान्ताः सरलशैल्या निरूपिताः सन्ति । सर्वैः सुलभतया अवगमनयोग्याः च सन्ति ।

१५ शतके सिक्खमतम् अस्माकं देशस्येभ्यः विविधमतेभ्यः प्रेरितम् इति कारणतः तत्र बहूनां मतानाम् अंशाः सन्ति । न केवलं सिक्खजनाः, अपि तु उत्तरभारतीयाः बहवः सिक्खेतरजनाः अपि एतं ग्रन्थसाहेबग्रन्थं पवित्रं मन्यमानाः भक्त्या पठन्ति ।

(आधारः - कुशवन्तसिंहस्य ‘सिक्ख-इतिहासः’)

शिष्यपदात् ‘सिक्ख’ शब्दः उत्पन्नः अस्ति । सिक्खमतं दशगुरुणां, तेषां शिष्याणां च सम्बद्धम् इति वक्तुं शक्यते । ‘सिक्ख’ पदस्य अर्थः - ‘यः सिक्खगुरोः निमित्तं स्वजीवितम् एव अर्पयितुं सिद्धः सः’ इति ।

दश गुरवः - १. गुरुनानकः (१४६९ - १५३९) २. गुरुः अङ्गदः (१५०४ - १५५२) ३. गुरुः अमरदासः (१४७९ - १५७४) ४. गुरुः रामदासः १५३४ - १५८१) ५. गुरुः अर्जुनदेवः (१५६३ - १६०६) ६. गुरुः हरगोविन्दः (१५९५ - १६४४) ७. गुरुः हरिरायः (१६३० - १६६१) ८. गुरुः हरिकृष्णः (१६५६ - १६६४) ९. गुरुः तेगबहद्दूर (१६२१ - १६७४) १०. गुरुः गोविन्दसिङ्गः (१६६६ - १७०८)

गुरुः इति पदम् केवलम् एतेषु दशजनेषु अन्वेति ।

प्रपञ्चस्य सृष्टिकर्तृविषये गुरुनानकवर्यः एवम् उक्तवान् अस्ति -

‘सः स्तम्भं विना एव स्वर्गं निर्मितवान् अस्ति ।

स्ववाचा सूर्यचन्द्रौ निर्माय तयोः कान्तिं पूरितवान् अस्ति ।

तस्य मातापितरौ न स्तः । तस्य जन्मदाता अपि कोऽपि नास्ति ।

तस्य न किमपि रूपम् अस्ति । जातिभेदः अपि नास्ति तस्मिन् ।

भगवान् पञ्चभूतैः प्रपञ्चं सृष्टवान् अस्ति ।

एतत् विश्वम् एव भगवतः अद्भुतसृष्टिः ।

भगवतः अपारशक्तेः निदर्शनम् एतत् ।”

भवन्तः जानन्ति वा ?

१. विजयनगरसाम्राज्यस्य स्थापकी सहोदरी की ?
२. स्ववासस्थानं नगरं स्वस्य नाम्ना एव प्रसिद्धिं प्राप्नुयात् इति आशयं प्रकटितवान् सुप्रसिद्धः ग्रन्थकर्ता कः ?
३. अस्माकं देशे हिन्दी विहाय अधिकसंख्याकैः उपयुज्यमानाः चतस्रः भाषाः काः ?
४. बहुदूरं समुद्रे तरणं कृतवान् कीडाकारः कः ? सः कदा कुत्र तारणं तरणं कृतवान् ?
५. प्राचीनः संस्कृतवैयाकरणः कः ? तेन रचितः ग्रन्थः कः ?
६. द्विपकिका (सैकल) केन संशोधिता ? कदा च संशोधिता ?
७. 'दक्षन् राणी' इति नाम्ना किं नगरं निर्दिश्यते ?
८. 'आधुनिक सिक्रपूर' राज्यस्य स्थापकः कः ? कदा च तत् स्थापितम् अभवत् ?
९. 'बाम्बेडक' इत्यस्य वैशिष्ट्यं किम् ?
१०. जपानदेशस्य संसद्भवनस्य नाम किम् ?
११. पीलेनामकः फूटबाल्कीडाकारः विद्यति तमे शतके प्रसिद्धिं प्राप्तवान् । तेन कीदृशः विक्रमः साधितः ?
१२. धूमैः परिमाणं कियत् ?
१३. अतीव भारवती स्त्री का ? तस्याः भारश्च कियान् ?
१४. अधिकसंख्याकाः अभिपर्वताः प्रपञ्चस्य कस्मिन् देशे सन्ति ?
१५. केचन बालकाः सद्यः एव इङ्ग्लीषकुल्यायाः तरणं कृतवन्तः । तेषु एकः बालकः चतस्रः कुल्याः पञ्चसप्ताहाभ्यन्तरे तीर्णवान्, सः बालकः कः ?
१६. 'उदयसूर्यभूमिः' इति प्रसिद्धिं गतः देशः कः ?
१७. सः प्राणी कः, यश्च जलस्य अन्तर्भागे एव वेगेन घावति ?

उत्तराणि

१. राजाहर्षदेव ।
२. अलबरूनी ।
३. असिफाबादी, उर्दू, बंगाली, मराठी, गुजराती ।
४. एडमंड हार्न ।
५. पाणिनीयः ।
६. एडमंड हार्न ।
७. बाम्बे ।
८. एडमंड हार्न ।
९. बाम्बे ।
१०. जपान ।
११. एडमंड हार्न ।
१२. धूमः ।
१३. अतीव भारवती स्त्री ।
१४. अल्फ्रेड रसेल वॉल्सेली ।
१५. एडमंड हार्न ।
१६. एडमंड हार्न ।
१७. एडमंड हार्न ।



दोषदर्शी

दयानिधिः महान् पण्डितः । तस्य पाण्डित्येन सन्तुष्टः भूस्वामी दयानिधये दत्त-एकरपरिमितं क्षेत्रं दत्तवान् आसीत् । दयानिधिः कृषिकस्य भूषणस्य द्वारा तस्मिन् क्षेत्रे कृषिकार्यं कारयति स्म । भूषणः अतीव सज्जनः । दयानिधिः महान् पण्डितः इति कारणतः तद्विषये महती श्रद्धा भूषणस्य । अतः सः दयानिधेः क्षेत्रे श्रद्धया कृषिकार्यं करोति स्म ।

किन्तु दयानिधेः तृप्तिः एव न आसीत् भूषणस्य कार्यविषये । सः सर्वदा भूषणं निन्दति स्म - 'भवान् मन्दं कार्यं करोति । चिन्तनं विना कार्यं करोति । स्वच्छतायाः परिज्ञानम् एव नास्ति भवतः' इति ।

दयानिधेः विषये भूषणस्य महान् आदरः । दयानिधेः वचनानुसारम् एव व्यवहरणीयम् इति बहुधा प्रयत्नं करोति स्म सः । 'मन्दं कार्यं करोति' इति दयानिधेः

वचनं स्मरन् भूषणः यदि वेगेन कार्यं करोति, तदा दयानिधिः - "अनालोच्य एव शीघ्रं कार्यं करोति चेत् कार्यं सफलं न भवति । सावधानम् एव कार्यं करणीयम् इति ज्येष्ठैः यत् उच्यते तत् अनुभवबलात् एव" इति तर्जयति स्म ।

कदाचित् दयानिधिः भूषणम् उक्तवान् - "रञ्जुम् उपयुज्य कूपतः जलम् उद्धरतु" इति ।

जलम् उद्धृत्य महत् जलपात्रं पूरणीयं चेत् हस्तौ ध्रान्तौ भवतः इति विचिन्त्य भूषणः महाजलपात्रम् एव रज्ज्वा बद्ध्वा कूपे त्यक्तवान् । क्षणाभ्यन्तरे एव जलपात्रं पूर्णम् अभवत् । जलपात्रम् उद्धृतवान् भूषणः ।

एतत् दृष्ट्वा दयानिधिः कूपसमीपम् आगत्य भूषणम् उद्दिश्य - "किमिदम् अकार्यं भवतः ?" इति कोपेन पृष्टवान् ।

तदा भूषणः उक्तवान् - "भवान् कार्यम्

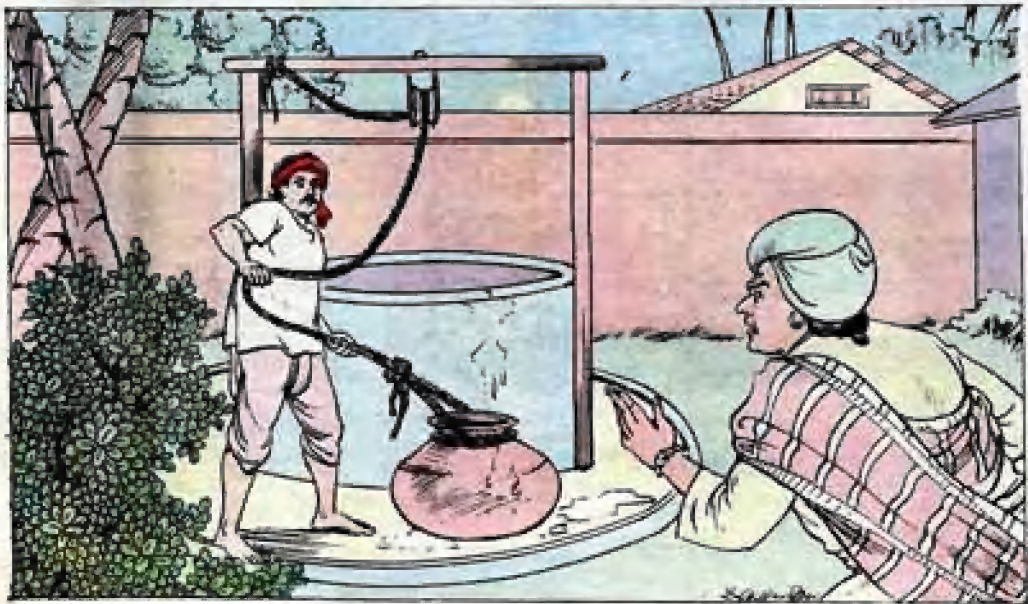
उक्तवान् खलु ! अहं विचिन्त्य कार्यं कृतवान् । क्षणाभ्यन्तरे कार्यं समाप्तम्” इति ।

“येषां बुद्धिः नास्ति, तेषां चिन्तनेन अपि किमपि प्रयोजनं नास्ति । भवतः कार्येण भारं बोधुम् अशक्ता रज्जुः छिन्ना भवेत् । भवतः अस्मिभङ्गः अपि भवेत् । इतः परं कदापि माम् अपृष्ट्वा एतादृशानि अविवेकपूर्णानि कार्याणि मा करोतु” इति तर्जितवान् दयानिधिः ।

तदा भूषणः दयानिधेः कोपं शमयितुम् इच्छन् उक्तवान् - “भोः ! अहं भवन्तम् असत्यम् उक्तवान् । वस्तुस्थितिः अन्या एव । बहुभ्यः वर्षेभ्यः एतत् कार्यम् एतेन प्रकारेण एव कुर्वन् अस्मि अहम् । तेन कापि हानिः न जाता । तस्मात् अनुभवबलात् एव

कार्यकरणेन मम परिश्रमः न्यूनः जातः” इति ।

तदा दयानिधिः कोपेन पुनः उक्तवान् - “हुम् । अनुभवबलं सर्वदा उपकारकं न भवति । व्यवहारज्ञानं पण्डित्यं च यदि न भवेत् तर्हि किं तेन अनुभवबलेन ? चिन्तयतु - अरण्ये स्थितं भवन्तं कश्चन व्याघ्रः अनुधाव्य आगतवान् इति । तदा भीत्या भवता कदाचित् लङ्घनं क्रियेत, दैववशात् अपायः न प्राप्येत अपि । किन्तु एतम् अनुभवम् आधारीकृत्य पुनः कदाचित् यदि भवान् पर्वतात् अघ्नः लङ्घनं करोति तर्हि भवतः पादभङ्गः भवेत् । मरणम् अपि सम्भवेत् । अतः अत्र ज्ञानम् एव उपकर्तुम् अर्हति, न अनुभवः । सौभाग्यवशात् भवान् मम आश्रये प्राप्तवान् अस्ति ! यदि भवान् मम



मार्गदर्शनं विना कार्यं कृतवान् स्यात् तर्हि बहुधा कष्टम् अनुभूतवान् स्यात्" इति ।

दयानिधिः सर्वदा अपि स्वच्छताविषये बोधयति इति कारणतः भूषणः कदाचित् प्रातःकाले स्नात्वा श्वेतवस्त्रं धृत्वा, शरीरं सुगन्धद्रव्येण लेपयित्वा दयानिधेः गृहं गतवान् ।

तं दृष्ट्वा दयानिधिः कोपेन पृष्ठवान् - "किं भोः, भवान् कार्यार्थम् आगतवान्, उत मया सह उपविश्य भोजनं कर्तुम् ?" इति ।

तदा भूषणः सविनयम् उक्तवान् - "भवान् सर्वदा मम अस्वच्छतां दृष्ट्वा खेदम् अनुभवति इति कारणतः अद्य अहं स्वच्छं स्नात्वा शुभ्रं वस्त्रं धृत्वा आगतवान् अस्मि" इति ।

एतत् श्रुत्वा दयानिधिः निष्ठुरम्

उक्तवान् - "मत्संकाशे असत्यं मा वदतु भवान् । 'यदि स्वच्छं स्नात्वा आगच्छामि, तर्हि मत्स्वामी मद्वारा श्रमजनकं किमपि कार्यं न कारयति' इति भवान् चिन्तितवान् अस्ति इति मन्ये । यदि कार्यं कर्तुं भवतः इच्छा नास्ति, तर्हि अनुरोधपूर्वकं कार्यं न कारयामि अहम् । भवतः मनसि यत् अस्ति, तत् धैर्येण वदतु तावत्, नो चेत् इतः निर्गच्छतु भवान्" इति ।

दयानिधेः एतत् वचनं श्रुत्वा अतीव क्षिन्नः भूषणः गृहं गत्वा वस्त्रं परिवृत्य पुनः दयानिधेः गृहम् आगतवान् । तेन उक्तानि कार्याणि कृतवान् च ।

दयानिधिः यावत् तर्जयति चेदपि भूषणः कुपितः न भवति । भूषणः अन्येषाम् अपि बहूनां क्षेत्रेषु कृषिकार्यं कुर्वन् अस्ति ।





विना कारणं यः कोऽपि तर्जयति चेत् भूषणः
अवश्यं प्रत्युत्तरं ददाति । किन्तु
दयानिधिविषयिकया गौरवभावनया
दयानिधेः तर्जनवचनानि श्रुत्वा अपि मौनम्
आश्रयति स्म भूषणः । भूषणस्य पुत्रः
चन्द्रकान्तः । चन्द्रकान्तः अतीव बुद्धिमान् ।
सः पितृवत् कृषिकार्ये न आसक्तिमान् ।
बाल्यादारभ्य अपि अध्ययने तस्य महती
इच्छा ।

पुत्रः चन्द्रकान्तः दयानिधेः शिष्यत्वेन
नियोजनीयः इति इच्छति भूषणः । किन्तु
चन्द्रकान्तः अध्ययनार्थं पार्श्वग्रामस्थस्य
पण्डितस्य समीपं गच्छति स्म, न तु
दयानिधिम् आश्रयति स्म । यदा कदाचित्
दयानिधेः समीपं गत्वा आत्मना यत् अधीतं,

तस्य परीक्षां करोति स्म चन्द्रकान्तः ।

कदाचित् दयानिधिः चन्द्रकान्तम्
उक्तवान् - “भवान् बुद्धिमान् अस्ति । मम
शिष्यत्वेन अवैव तिष्ठतु भवान् । भवन्तं माह्वं
महापण्डितं करिष्यामि” इति ।

तदा चन्द्रकान्तः सविनयम् उक्तवान् -
“भवान् तु महान् पण्डितः । सूर्यतापं सोढुम्
अशक्तः आजनेयः मूर्च्छां गतः । भवान् अपि
सूर्यसरणः । भवतः शिष्यत्वेन स्थातुं मम
योग्यता नास्ति । अतः एव अहम् अन्यस्य
सकाशात् अध्ययनं कुर्वन् अस्मि । यदा
किञ्चित् ज्ञानं सम्पादयिष्यामि, तदा अवश्यं
भवतः समीपम् एव आगत्य भवतः
शिष्यत्वेन एव स्थास्यामि” इति ।

चन्द्रकान्तः यदा यदा दयानिधिं पश्यति
स्म, तदा तदा सः दयानिधेः प्रशंसां करोति
स्म । एतेन दयानिधिः अतीव सन्तुष्टः भवति
स्म ।

कदाचित् दयानिधिः भूषणम् उक्तवान् -
“अध्ययनविषये भवतः पुत्रः अतीव
बुद्धिमान् । किन्तु शिष्टाचारं न जानाति सः ।
यदा यदा मां द्रष्टुम् आगच्छति सः, तदा मां
न नमस्करोति सः” इति ।

तदा भूषणः सविनयम् उक्तवान् -
“भवान् ज्येष्ठः अस्ति । यदि मम पुत्रः
शिष्टाचारं न जानाति, तर्हि भवान् एव
कृपया तं बोधयतु” इति ।

भूषणस्य वचनं श्रुत्वा दयानिधिः सखेदम्
उक्तवान् - “महानुभावाः ‘नमस्कारं करोतु’
इति स्वयं न वदन्ति । अहं बहुवारं चन्द्रकान्तम्

उक्तवान् अस्मि यत् - यदा ज्येष्ठाः मिलन्ति, तदा ते प्रथमं नमस्करणीयाः इति । यद्यपि मम वचनम् अङ्गीकरोति सः, किन्तु मां न नमस्करोति" इति ।

भूषणः तस्मिन् दिने रात्रौ पुत्रं चन्द्रकान्तं पृष्ठवान् - "किमर्थं भवान् दयानिधिं न नमस्करोति ?" इति ।

पितुः वचनं श्रुत्वा चन्द्रकान्तः मन्दहासं प्रकटय्य मौनं स्थितवान् । तदा भूषणः पुत्रं बोधितवान् - "इतः परं यदा यदा भवान् दयानिधिं पश्यति तदा तदा तं नमस्करोतु । तेन भवान् दोषमुक्तः भविष्यति" इति ।

एतत् श्रुत्वा चन्द्रकान्तः उक्तवान् - "अहम् अध्ययनं कृत्वा ज्ञानं सम्पादितवान् अस्मि इति कारणतः दयानिधिः मां किमपि न वदति । अहं तस्य प्रशंसां करोमि इति कारणतः सः अतीव सन्तुष्टः भवति । अहं तं न नमस्करोमि चेत् सः तद्विषये भवन्तं वदति, न तु माम्" इति ।

तदा भूषणः उक्तवान् - "दयानिधिः ज्येष्ठः पण्डितः च । भवान् तं न नमस्करोति

इति यत् तत् तु भवतः दोषः एव" इति ।

पितुः आग्रहपूर्वकं वचनं श्रुत्वा चन्द्रकान्तः उक्तवान् - "आम् । दयानिधिं न नमस्करोमि इति यत् तत् मम दोषः एव । तत् अङ्गीकरोमि अहम् । अहं यावत्पर्यन्तं दयानिधिं न नमस्करोमि तावत्पर्यन्तं सः मम अन्यदोषाणां विषये न चिन्तयति । मम अध्ययनविषये दोषान् अन्विष्यन् सः तान् दोषान् भवन्तं वदति चेत् भवतः अपि खेदः । मम अपि निरुत्साहः भवति । अध्ययनशीलः प्रोत्साहम् इच्छति । प्रतिपदं दोषः एव प्रदर्श्यते चेत् शिष्याः उत्साहहीनाः भवन्ति । अतः दयानिधेः लक्ष्यं मम अन्यदोषाणां विषये मा भवतु इति कारणतः एकम् एव दोषम् आचरन् अस्मि । यदि भवान् मम हितम् एव इच्छति, तर्हि 'दयानिधिं नमस्करोतु' इति मां मा वदतु" इति ।

पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा भूषणः वास्तविकीं स्थितिं ज्ञातवान् । पुत्रस्य बुद्धिमत्तां दृष्ट्वा अतीव सन्तुष्टः भूषणः 'दोषदर्शिनः नमस्कारार्हाः न' इति ज्ञातवान् ।





कोपः न लाभदायकः

वल्लभपुरे परशुरामः नाम कश्चित् कृषिकः आसीत् । लघुविषयम् अपि पर्वतीकृत्य तद्विषये कोपप्रदर्शनं तस्य स्वभावः ।

कदाचित् परशुरामस्य स्नेहितः मुकुन्दः अश्वशकटद्वारा नगरात् परशुरामस्य गृहम् आगतवान् । अश्वशकटात् अवतीर्य चालकाय भाटकघनं दत्तवान् मुकुन्दः । चालकः मुकुन्देन दत्तं घनं स्वीकृत्य अश्वं प्रेरयन् ततः नगरं प्रतिगन्तुम् उद्युक्तः ।

तावता मित्रस्य स्वागतार्थं गृहात् बहिः आगतः परशुरामः मुकुन्दं पृष्टवान् - “चालकाय भवान् कति रूप्यकाणि दत्तवान् ?” इति ।

“पञ्च रूप्यकाणि” इति उक्तवान् मुकुन्दः । तदा परशुरामः चालकम् उद्दिश्य कोपेन उक्तवान् - “किं रे ! नगरात् अत्र आगन्तुं पञ्च रूप्यकाणि स्वीकृतवान् वा

भवान् ? एषः मम स्नेहितः अपरिचितः इति कारणतः एतं वञ्चयितुम् इच्छन् पञ्च रूप्यकाणि स्वीकृतवान् खलु भवान् ? भवता स्वीकृतम् अधिकम् अभवत् । अतः त्रीणि रूप्यकाणि प्रत्यर्पयतु भवान्” इति ।

परशुरामस्य वचनं श्रुत्वा शकटचालकः भयम् अनुभवन् अपि सविनयं परशुरामम् उक्तवान् - “स्वामिन् ! एषः भवतः स्नेहितः द्वित्रान् विचारितवान् । अनन्तरम् एव मम समीपम् आगत्य पञ्चरूप्यकाणां दानम् अङ्गीकृतवान् च” इति ।

तदा परशुरामः - “एवं वा ? तर्हि भवन्तः सर्वे अपि अश्वशकटचालकाः सम्भूय भाटकम् अधिकं कृतवन्तः इति मन्ये । चालकानां व्यवहारः यः कोऽपि भवतु । मम समीपे भवतः तन्त्रं न चलति” इति वदन् बलात् चालकस्य उपरि आक्रमणं कृत्वा तस्य कोषतः पञ्च रूप्यकाणि आकृष्य ततः

रूप्यकत्रयं स्वीकृत्य पुनश्च रूप्यकद्वयं
चालकस्य उपरि क्षिप्तवान्।

परशुरामस्य व्यवहारेण, खिन्नः
शकटचालकः सविनयम् उक्तवान् -
“भवादृशानां महानुभावानाम्” एतादृशः
व्यवहारः सर्वथा न युज्यते” इति।

चालकस्य वचनं श्रुत्वा अतीव क्रुद्धः
परशुरामः उक्तवान् - “किं रे। माम् एव
उपदिशति वा भवान्? कियत् धैर्यं भवतः?
मया किं करणीयम्, किं न करणीयम् इति
वक्तुं भवतः कः अधिकारः? प्रथमम् इतः
निर्गच्छतु। पुनः किमपि वक्तुम् आरभते चेत्
भवन्तम् उद्दिश्य शुनकं प्रेरयामि। जागरूकः
भवतु भवान्” इति।

‘कोधाविष्टः परशुरामः यत्किमपि कर्तुं
सिद्धः भवेत् अपि। स्ववचनानुसारं शुनकं

प्रेरयेत् अपि’ इति चिन्तयन् शकटचालकः
भयात् ततः वेगेन अश्वशकटं चालयन्
गतवान्।

एतत् सर्वं मौनं पश्यन् आसीत् मुकुन्दः।
शकटचालकस्य निर्गमनान्तरं मुकुन्दः
परशुरामं बोधयितुम् इच्छन् उक्तवान् -
“मित्र! परशुराम! दिने दिने भवतः कोपः
वर्धमानः एव अस्ति। अस्माकं पूर्वजाः ज्येष्ठाः
स्वानुभवबलात् एव उक्तवन्तः सन्ति -
‘कोपः एव आत्मनः शत्रुः’ इति। एतस्य
वचनस्य तात्पर्यं ज्ञात्वा आत्मनः कोपं
शमयितुं प्रयत्नं करोतु भवान्” इति।

तदा परशुरामः हसन् उक्तवान् -
“मुकुन्द! कोपः एव आत्मनः शत्रुः इति
पूर्वजानां वचनं, सत्यम्। ते एव पूर्वजाः
उक्तवन्तः सन्ति - ‘दरिद्रस्य कोपः तम् एव



घातयति' इति । अतः कोपप्रदर्शनेन दरिद्रस्य एव हानिः, न तु धनिकस्य इति तु स्पष्टम् अभवत् खलु ! अपि च बहुषु सन्दर्भेषु कोपः अस्माकं लाभदायकः एव भवति । उदाहरणार्थम् इदानीं मम कोपात् भीतः अश्वशकटचालकः पलायितः । तेन रूप्यकत्रयस्य लाभः जातः अस्माकम् । मम दैनन्दिनजीवने अपि तथैव । मम कोपात् भीताः मम कृषिकाः कर्मकराः च परिश्रमेण कार्यं कुर्वन्ति । अतः अहं मम कोपस्य न्यूनीकरणापेक्षया अपि कदाचित् अत्यधिकं कोपं प्रदर्शयामि" इति ।

एवं वदन् परशुरामः अकस्मात् अधः दृष्टवान् । तत्र रूप्यकद्वयं पतितम् आसीत् । तत् रूप्यकद्वयं स्वीकुर्वन् परशुरामः मुकुन्दम् उक्तवान् - "मुकुन्द ! पश्यतु । मम कोपात् भीतः शकटचालकः स्वकीयं भाटकधनं रूप्यकद्वयम् अपि अस्वीकृत्य गतवान् अस्ति । अतः पञ्चरूप्यकाणां लाभः अस्माकम्" इति ।

"भवान् यत् वदति तत् अंशतः सत्यम्

एव" इति वदन् मुकुन्दः किमपि स्मरन् हठात् भीतः । तस्य मुखं म्लानं जातम् ।

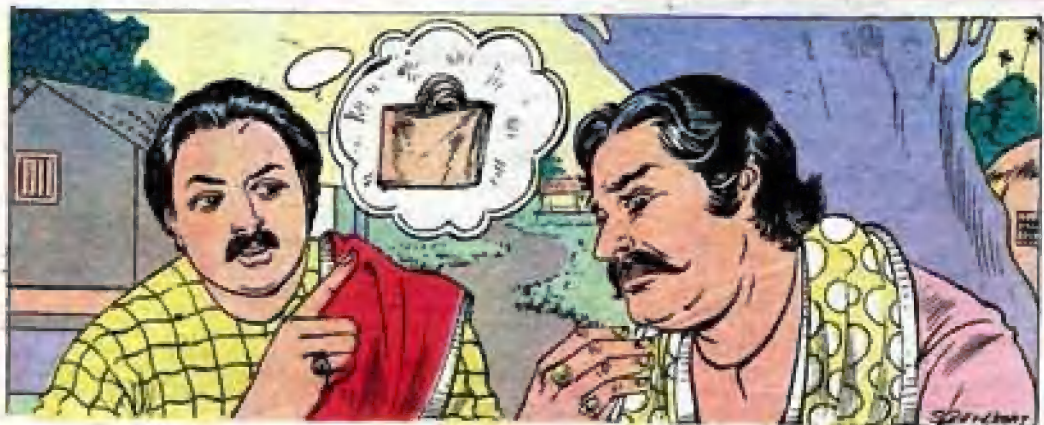
एतत् दृष्ट्वा परशुरामः आश्चर्येण पृष्टवान् - "मित्र ! किं जातं भवतः ?" इति ।

तदा मुकुन्दः क्षीणस्वरेण उक्तवान् - "भवता यथा उक्तं तदनुगुणं सुवर्णहारम् अहम् आनीतवान् आसम् । भवता यदा शकटचालकेन सह वादः आरब्धः तदा दिग्भ्रान्तः अहं स्यूतस्वीकरणं विस्मृतवान् । अतः हारः नष्टः इदानीम्" इति ।

हारः नष्टः इति ज्ञातवान् परशुरामः दिग्भ्रान्तः ।

क्षणकालस्य अनन्तरम् उक्तवान् मुकुन्दः - "कोपात् पञ्चरूप्यकाणां लाभः इति भवता चिन्तितम् आसीत् । किन्तु हारनाशात् तु महती हानिः एव अनुभूता । अतः कोपः न केवलं दरिद्रस्य, अपि तु धनिकस्य अपि हानिं जनयति" इति ।

मुकुन्दस्य वचनं श्रुत्वा अङ्गीकारपूर्वकं शिरः चालितवान् परशुरामः । तस्मात् दिनात् तस्य कोपः न्यूनः जातः ।





महाभारतम्

भीष्मस्य वचनं श्रुत्वा सत्यवती लज्जाम् अनुभवन्ती पूर्वम् आत्मना पराशरमहर्षिद्वारा कृता कृष्णद्वैपायनस्य प्रसूतिम् उक्त्वा - “कृष्णद्वैपायनः मम पुत्रः । महातपस्वी सः वेदान् विभक्तवान् अस्ति । कृष्णद्वैपायनद्वारा भरतवंशं रक्षाम्” इति ।

भीष्मः सत्यवत्याः एतत् वचनम् अङ्गीकृतवान् । सत्यवती पुत्रं स्मृतवती । अपरक्षणे एव कृष्णद्वैपायनः आगत्य मातरं सत्यवतीं पृष्ठवान् - “अम्ब ! मां किमर्थं स्मृतवती भवती ?” इति ।

तदा सत्यवती स्वकीयम् आशयं प्रकटीकृतवती । कृष्णद्वैपायनः एतत् अङ्गीकृतवान् ।

अनन्तरं सत्यवती अम्बिकाम् आहूय

उक्तवती - “अद्य रात्री भवती आत्मानम् अलङ्कृत्य शयनगृहं गच्छतु । तत्र भवत्याः ज्येष्ठदेवरः आगमिष्यति । तस्य द्वारा भवती पुत्रं प्राप्य अस्माकं वंशम् उद्धारतु” इति ।

‘देवरः’ इति कथनेन भीष्मः एव स्यात् इति चिन्तितवती अम्बिका ।

तस्मिन् दिने रात्री अम्बिका आत्मानं सम्यक् अलङ्कृत्य शयनप्रकोष्ठं गतवती । कृष्णद्वैपायननामकः व्यासः तत्र आगतवान् ।

व्यासस्य श्वेतस्मश्रु, कृष्णवर्णीयां शरीराकृति, रक्तवर्णयुक्तं नेत्रं च दृष्ट्वा अम्बिका भयात् नेत्रे निमीलितवती । यतः अम्बिका इतःपूर्वं व्यासं न दृष्टवती आसीत् । सा भयात् नेत्रे निमीलितवती इति कारणतः अम्बिकायां जातः धृतराष्ट्रः जन्मतः एव



अन्धः जातः ।

एतस्मात् सत्यवती अतीव खिन्ना । अतः सा पुनः कदाचित् व्यासं स्मृतवती । तत्क्षणे एव व्यासः मातुः सत्यवत्याः समीपम् आगतवान् । आह्वानकारणं च पृष्टवान् ।

तदा सत्यवती स्वकीयम् आशयं व्यासं निवेदितवती ।

अनन्तरं च सत्यवती अम्बालिकाम् उक्तवती - “अद्य रात्रौ कश्चित् मुनिः भवत्याः शयनगृहम् आगमिष्यति । तद्वारा सुपुत्रं प्रसूय वंशं रक्षतु” इति ।

अम्बालिका एतत् अङ्गीकृतवती ।

तस्मिन् दिने रात्रौ अम्बालिका शयनप्रकोष्ठम् आगतं व्यासं दृष्ट्वा यद्यपि नेत्रे न निमीलितवती, तथापि भयात् तस्याः

मुखं पाण्डुरं जातम् । परिणामतः गर्भं धृतवत्याम् अम्बालिकायां श्वेतशरीरी पाण्डुः जातः ।

एतस्मात् अपि सत्यवत्याः समाधानं न जातम् । सा पुनरपि अम्बिकाम् आहूय उक्तवती - “भयं विना व्याससमीपं गत्वा सुपुत्रं प्राप्य अस्माकं वंशम् उद्धरतु कृपया” इति ।

किन्तु अम्बिका व्यासस्य नामश्रवणमात्रेण एव भयात् कम्पते स्म । अतः सा तद्दिने रात्रौ शयनप्रकोष्ठं स्वदासीं प्रेषितवती ।

दास्यां जातः शिशुः एव विदुरः ।

एवंरूपेण जन्म प्राप्य धृतराष्ट्रः, पाण्डुः, विदुरः च कमशः प्रौढाः जाताः । भीष्मः उत्तमरूपेण राज्यं पालयति स्म । तस्य राज्यपालनसमये सर्वाः अपि प्रजाः सुखेन जीवन्ति स्म । भीष्मः धृतराष्ट्रं, पाण्डुं, विदुरं च क्षत्रियोचिताः विद्याः, वेद-वेदाङ्गानि, नीतिशास्त्राणि च पाठितवान् ।

तेषु त्रिषु धृतराष्ट्रः अतीव बलवान् । पाण्डुः धनुर्विद्यायां प्रवीणः । विदुरः धर्मपरः ।

कानिचन वर्षाणि अतीतानि । भीष्मः चिन्तितवान् यत् - त्रिषु अन्यतमस्य राज्याभिषेकः करणीयः इति ।

धृतराष्ट्रः जन्मतः एव अन्धः । विदुरः दासीपुत्रः । अतः तौ द्वौ विहाय पाण्डोः पट्टाभिषेकं कृतवान् भीष्मः ।

त्रयः अपि विवाहवयस्काः जाताः । तेषां

विवाहार्थं योग्याः कन्याः अन्वेष्टव्याः इति
चिन्तितवान् भीष्मः ।

गान्धारराजः सुबलः । तस्य पुत्री
गान्धारी । गान्धारी शिवस्य सकाशात् वरं
प्राप्तवती आसीत् - शतं पुत्राः भवेयुः इति ।

भीष्मः गान्धारराजाय सुबलाय वार्ता
प्रेषितवान् यत् - भवतः पुत्रीं गान्धारीं
धृतराष्ट्राय दत्त्वा विवाहं कारयतु इति ।

धृतराष्ट्रः जन्मतः एव अन्धः इति विषयं
सुबलः जानाति एव । तथापि धृतराष्ट्रस्य
वंशः श्रेष्ठः इति मत्वा पुत्रीं धृतराष्ट्राय दातुम्
अङ्गीकृतवान् सुबलः ।

भावी पतिः अन्धः इति विषयं श्रुत्वा
गान्धारी स्वनेत्रयोः वस्त्रं बद्ध्वा निर्णीतवती
यत् - आजीवनम् अन्धत्वेन एव जीवनं
यापयामि इति । गान्धार्याः अग्रजः शकुनिः

तां हस्तिनापुरं नीत्वा तस्याः विवाहं
निर्वर्तितवान् । भीष्मः शकुनिं सम्यक्
सत्कृतवान् । अनन्तरं शकुनिः ततः स्वदेशं
गतवान् ।

पाण्डोः विवाहार्थं भीष्मः प्रयत्नम्
आरब्धवान् । कुन्तीनामिका यादवकन्या
विवाहवयस्का अस्ति इति वार्ता श्रुतवान्
भीष्मः ।

यादवप्रमुखेषु अन्यतमः शूरः । शूरः
वसुदेवस्य पिता । शूरस्य पृथानामिका पुत्री
आसीत् ।

शूरस्य पितृभगिनीपुत्रः कुन्तिभोजः ।
कुन्तिभोजस्य अपत्यं न आसीत् । अतः सः
पृथां स्वगृहे स्थापयित्वा तां पुत्रीवत्
पालितवान् । कुन्तिभोजस्य गृहं ये अतिथयः
आगच्छन्ति स्म, तान् श्रद्धया सत्करोति स्म





पृथा ।

कदाचित् मुनिवर्यः दूर्वासाः कुन्तिभोजस्य गृहम् आगतवान् । पृथा दूर्वाससं सत्कृतवती । तस्मात् अतीव सन्तुष्टः दूर्वासाः मन्त्रमेकं पृथां पाठयित्वा उक्तवान् - 'वत्से ! भवती मया पाठितं मन्त्रं स्मृत्वा यदि देवं प्रार्थयति, तर्हि देवः प्रत्यक्षीभूय श्रेष्ठेन पुत्रेण भवतीम् अनुगृह्णाति' इति ।

दूर्वाससः वचनं परीक्षितुम् इच्छन्ती कुन्ती कदाचित् सूर्यं स्मरन्ती दूर्वाससा पाठितं मन्त्रम् उच्चारितवती । अपरक्षणे एव सूर्यः कुन्त्याः पुरतः प्रत्यक्षः जातः । सा सूर्यम् उद्दिश्य पुत्रं न प्रार्थितवती । तथापि सा सूर्यतः गर्भवती जाता । नवमासानन्तरं सा कवचकुण्डलयुक्तं पुत्रं प्रसूतवती । तदा

किञ्चिद्व्यतामूढा सा शिशुम् एकस्यां पेटिकायां संस्थाप्य तां पेटिकां नद्यां क्षिप्तवती ।

कुन्त्या नद्यां क्षिप्ता पेटिका केनचित् सूतेन प्राप्ता । पेटिकास्थः शिशुः बालसूर्यः इव प्रकाशते स्म । तं शिशुं दृष्ट्वा अतीव सन्तुष्टः सूतः शिशुं पत्न्यै राघायै दत्तवान् । राघा शिशुं वात्सल्येन पोषितवती । सः शिशुः एव कर्णः ।

अनन्तरं कुन्तिभोजः पुत्र्याः कुन्त्याः स्वयंवरं व्यवस्थापितवान् । पाण्डुः अपि कुन्त्याः स्वयंवरं गतवान् । कुरुवंशे जातस्य, दर्शनेन सुन्दरस्य पाण्डोः कण्ठे मालास्थापनपूर्वकं तं परिणीतवती कुन्ती । अनन्तरं कुन्तिभोजः कुन्त्याः पाण्डोः च विवाहं वैभवेन कारितवान् । प्रभूतम् उपायनं दत्त्वा तौ हस्तिनापुरं प्रति प्रेषितवान् ।

कुन्तीनिमित्तम् एव एकम् अन्तःपुरं सिद्धम् अभवत् । तत्र कुन्ती पाण्डुः च सकलसुखानि अनुभवतः स्म ।

पाण्डोः द्वितीयविवाहः कारणीयः इति निश्चितवान् भीष्मः । मद्राजस्य शल्यस्य एका अनुजा अस्ति इति ज्ञात्वा भीष्मः सपरिवारं शल्यस्य राजधानीं गतवान् ।

शल्यः भीष्मं वैभवेन स्वागतीकृत्य तस्य आगमनोद्देशं पृष्टवान् ।

तदा भीष्मः शल्यं प्रार्थितवान् - 'भवतः भगिनीं माद्रीं पाण्डवे दत्त्वा विवाहं कारयतु' इति ।

एतत् श्रुत्वा शल्यः महता सन्तोषेण





उक्तवान् - "महान् सन्तोषः । किन्तु वधूदक्षिणास्वीकरणम् अस्माकं वंशस्य सम्प्रदायः । अतः भवान् वधूदक्षिणां दत्त्वा मम अनुजां नीत्वा भवतः गृहे एव विवाहं निर्वर्तयतु" इति ।

वंशस्य सम्प्रदायः पालनीयः एव इति कारणतः भीष्मः मद्राजाय सुवर्णाभरणानि वस्त्रवाहनानि च दत्त्वा माद्रीं हस्तिनापुरं नीतवान् । अनन्तरं शुभे मुहूर्ते पाण्डोः माद्रेयाः च विवाहं सर्वैर्भव कारितवान् ।

पाण्डुः द्वाभ्यां पत्नीभ्यां सह सुखेन कालं यापयति स्म ।

एकः मासः अतीतः । कदाचित् पाण्डोः इच्छा जाता यत् - दिग्विजयः करणीयः इति । अतः सः सैन्यं सञ्जीकृतवान् । रणभेरी

वादयित्वा भीष्मम् अन्यान् ज्येष्ठान् च नमस्कृत्य, ज्येष्ठानाम् आशीर्वादं प्राप्य दिग्विजयार्थं प्रस्थितवान् सः । प्रथमं दक्षार्णदेशान् जितवान् पाण्डुः । अनन्तरं मगधदेशस्य उपरि आक्रमणं कृत्वा मगधराजं हतवान् । मगधं काशीं पुण्ड्रदेशं च जित्वा प्रभूतम् उपायनं प्राप्य स्वदेशं प्रत्यागतवान् ।

दिग्विजयं कृत्वा आगतं पाण्डुं भीष्मादयः ज्येष्ठाः स्वागतीकृत्य वैभवेन पाण्डोः सम्माननं कृतवन्तः । पाण्डुः आत्मना दिग्विजयसमये यत् उपायनरूपेण प्राप्तं, तत्सर्वं भीष्माय, सत्यवत्यै, विदुराय, मात्रे च वितीर्णवान् । अश्वमेधयागं च कृतवान् ।

सर्वे अपि अतीव सन्तुष्टाः अभवन् ।

अनन्तरं पाण्डुराजः पत्नीभ्यां सह विहारार्थं हिमालयप्रदेशस्यम् अरण्यं गतवान् । पाण्डोः अत्यावश्यकानि वस्तूनि प्रेषयति स्म धृतराष्ट्रः ।

भीष्मः हस्तिनापुरे देवकराजस्य पुत्र्याः विदुरस्य च विवाहं कारितवान् ।

कदाचित् व्यासः बुभुक्षितः सन् धृतराष्ट्रस्य गृहम् आगतवान् । गृहं प्रति आगतं व्यासं सत्कृत्य तं तोषितवती गान्धारी ।

गान्धार्याः आतिथ्येन सन्तुष्टः व्यासः ताम् उक्तवान् - "किमपि वरं प्रार्थयतु" इति । गान्धारी व्यासम् उक्तवती - "अहं शतं पुत्रान् इच्छामि" इति ।

व्यासः ताम् अनुग्रहीतवान् ।

कश्चन कालः अतीतः । गान्धारी गर्भवती

जाता । सा वर्षद्वयं यावत् गर्भं धृतवती । तावता कुन्त्या युधिष्ठिरः जन्म प्राप्तवान् इति वार्ता गान्धार्या श्रुता । 'व्यासः वरेण माम् अनुगृहीतवान् चेदपि इतोऽपि मम पुत्राः न जाताः । अहं गर्भं धृतवती चेदपि प्रसूतिः न जाता' इति चिन्तयन्ती अतीव खिन्ना गान्धारी पतिं धृतराष्ट्रम् अनुक्त्वा एव स्वगर्भं बलेन ताडितवती । वर्षद्वयं यावत् कष्टेन धृतं गर्भं निष्कासयितुम् इष्टवती गान्धारी ।

धृतराष्ट्रं द्रष्टुम् आगतः व्यासः एतं विषयं ज्ञात्वा गान्धारीसमीपं गत्वा पृष्टवान् - "किमिदम् अकार्यं भवत्याः ?" इति ।

तदा गान्धारी दुःखेन अश्रूणि सावयन्ती व्यासम् उक्तवती - "शतपुत्रवती भव इति भवान् मां वरेण अनुगृहीतवान् । अहं गर्भवती तु जाता । किन्तु वर्षद्वयं यावत् गर्भः धृतः

चेदपि मम प्रसवः नैव जातः । एतावता पाण्डुराजस्य पत्नी कुन्ती सुन्दरं पुत्रं प्रसूतवती इति वार्ता श्रुतवती अहम् । एतस्मात् अतीव खिन्ना अहं मम उदरं बलात् ताडयित्वा अहम् एव गर्भपातं कृतवती । यद्यपि भवान् मां वरेण अनुगृहीतवान् आसीत्, तथापि मम गर्भः व्यर्थः अभवत्" इति ।

"मम वरः कदापि व्यर्थः न भविष्यति" इति उक्त्वा व्यासः गान्धारीम् उक्तवान् - "भवत्याः गर्भतः बहिः आगतान् शतं मांसखण्डान् जलेन स्वच्छं प्रक्षालयतु" इति ।

गान्धारी तथैव कृतवती ।

अनन्तरं व्यासः क्षालितान् मांसखण्डान् एकैकम् अपि एकैकस्मिन् घृतपात्रे



स्थापितवान् ।

तदा गान्धारी व्यासं प्रार्थितवती - “एते शतं मांसखण्डाः शतं पुत्राः भवन्ति । तैः शतपुत्रैः सह एकया पुत्र्या माम् अनुगृह्णातु कृपया” इति ।

गान्धार्याः आशयं पूरयितुम् इच्छन् व्यासः ताम् अनुगृहीतवान् । सुतस्य गर्भस्य एकोत्तरशतखण्डान् धृतपात्रे संस्थाप्य ततः निर्गतवान् व्यासः ।

एकवर्षानन्तरम् एकस्मात् पात्रात् प्रथमः पुत्रः जातः । प्रथमपुत्रस्य जन्मसमनन्तरम् एव अमङ्गलकराणि चिह्नानि दृष्टानि ।

अमङ्गलकराणि चिह्नानि दृष्ट्वा भीतः धृतराष्ट्रः भीष्मं, विदुरं, मन्त्रिणः, आस्थानपुरोहितान् च आहूय उक्तवान् - “अस्माकं वंशे युधिष्ठिरः पूर्वम् एव जन्म प्राप्तवान् अस्ति । इदानीं यः शिशुः जातः, तस्य राज्याहता अस्ति वा ? इति वदन्तु” इति ।

तदा पुरोहिताः उक्तवन्तः - “महाराज ! एषः वंशनाशकः अस्ति । अतः एतं

परित्यजतु । शते पुत्रेषु यदि एकः नष्टः भविष्यति, तर्हि न कापि हानिः । अतः निर्व्यामोहम् एतं त्यजतु भवान्” इति ।

विदुरः अपि क्षणकालं विचिन्त्य पुरोहितानां वचनम् एव पुरस्कृतवान् । किन्तु पुत्रव्यामोहकारणतः धृतराष्ट्रः कस्यापि वचनं न लक्षितवान् ।

एकोत्तरशतमांसखण्डेभ्यः प्रथमं जातः दुर्योधनः । अनन्तरं कमथः दुःशासनः, दुस्तहः इत्यादयः पुत्राः जाताः । दुश्शलानामिका पुत्री अपि जाता ।

गान्धारी यदा गर्भवती आसीत्, तस्मिन् एव काले धृतराष्ट्रः गान्धार्याः परतया स्वसाहाय्यार्थं काश्चित् वैश्यक्षियं नियोजितवान् आसीत् । धृतराष्ट्रस्य परिचारिका वैश्या स्त्री धृतराष्ट्रतः युयुत्सुनामकं पुत्रं प्राप्तवती ।

धृतराष्ट्रः सर्वान् अपि पुत्रान् राजोचितविद्याः पाठितवान् । यदा पुत्राः प्रौढाः अभवन्, तदा योग्याः कन्याः अन्विष्य वैभवेन पुत्राणां विवाहं कारितवान् च ।





अपरिमिता दानबुद्धिः

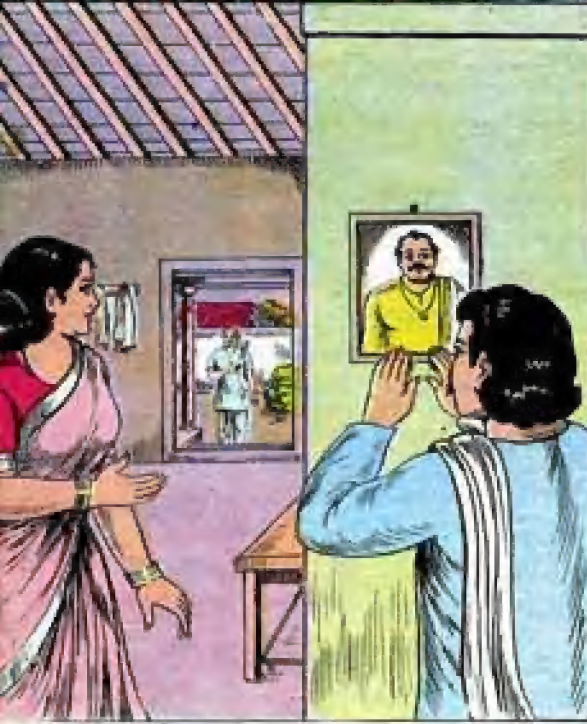
शिवशङ्करः दानशीलः । तस्य पत्नी महादेवी । सा पत्युः अनुकूला पत्नी । शिवशङ्करः सर्वथा दानधर्मादिकं करोति स्म इति कारणतः कालक्रमशः तस्य पित्रार्जिता सम्पत्तिः न्यूना जाता । तस्मात् दरिद्रः जातः शिवशङ्करः । अतः सः जीवननिर्वहणार्थं धनं सम्पादयितुम् इच्छन् गृहस्य पृष्ठतः विद्यमाने उद्याने शाकान् वर्धितवान् । किन्तु सः तान् शाकान् विना मूल्यं सर्वेभ्यः दत्तवान्, न तु विक्रीतवान् ।

शाकवर्धनतः धनसम्पादनं कर्तुम् अशक्तः शिवशङ्करः काष्ठविक्रयणेन धनं सम्पाद्य जीवननिर्वहणं करणीयम् इति विचिन्त्य कदाचित् परशुं गृहीत्वा अरण्यं गतवान् । आदिनं महता परिश्रमेण काष्ठानि सङ्गृह्य, काष्ठबन्धं गृहीत्वा गृहं गन्तुम् उद्युक्तः सः । तावता दरिद्रः कश्चित् तत्र आगत्य शिवशङ्करं दैन्येन उक्तवान् - "भोः अहं

निर्गतिकः अस्मि । मम पत्नी अकस्मात् अकालमरणं प्राप्तवती । जीवितकाले तु सा सुखं न अनुभूतवती । इदानीं मृतायाः तस्याः दहनं कर्तुं काष्ठानि आवश्यकानि । काष्ठानि केतुम् अपि मत्समीपे धनं नास्ति । अतः कृपया एतानि काष्ठानि मह्यं ददातु" इति ।

शिवशङ्करः काष्ठानि दरिद्राय दत्त्वा रिक्तहस्तः एव गृहं प्रत्यागतवान् । सः अरण्ये प्रवृत्तं सर्वं पत्नी निवेद्य उक्तवान् - "इदानीम् अस्माकं स्थितिः शोचनीया अस्ति । अन्यान् याचितुं मम मनः सर्वथा न अङ्गीकरोति । वाणिज्यं कर्तुम् अपि मम सामर्थ्यं नास्ति । तस्मात् आत्महत्या विना अन्यः मार्गः नास्ति अस्माकम्" इति ।

पत्नी महादेवी पतिं सान्त्वयन्ती उक्तवती - "यः देवः अस्मान् सृष्टवान्, सः एव अवश्यम् अस्मान् पोषयति । भवान् चिन्तां मा करोतु । श्वशुरेण मरणात् पूर्वं यत्



उक्तं, तत् करोतु भवान्' इति ।

शिवशङ्करस्य पिता मरणात् पूर्वं पुत्रम् उक्तवान् आसीत् - "भवान् भवतः जीवने दानकारणतः एव महत् कष्टम् अनुभविष्यति । यस्मिन् दिने भवान् जीवननिर्वहणम् अतीव कष्टम् इति चिन्तयति, तस्मिन् दिने स्नानं कृत्वा मम भावचित्रं स्पृशतु । अपरक्षणे एव कश्चित् भिक्षुकः भवतः गृहम् आगमिष्यति । तस्मै भिक्षां ददातु भवान् । तेन भवान् सुखं प्राप्स्यति" इति ।

अनन्तरदिने शिवशङ्करः प्रातःकाले उत्थाय, स्नात्वा पितुः भावचित्रं स्पृष्टवान् । अपरक्षणे एव कश्चित् भिक्षुकः आगत्य 'भिक्षां देहि' इति उक्तवान् ।

गृहे मुष्टिपरिमितं केवलं तण्डुलः आसीत् । तत् मुष्टिपरिमितं तण्डुलं भिक्षुकाय दातुं बहिः आगतवती महादेवी । तदा भिक्षुकः महादेवीम् उक्तवान् - "एकं तण्डुलं भवती पात्रे एव रक्षतु । तेन भवत्याः पात्रम् अक्षयं भविष्यति" इति ।

महादेवी तथैव कृतवती । आश्चर्यं नाम अपरक्षणे एव तण्डुलपात्रं पूर्णम् अभवत् ।

तस्मात् दिनात् आरभ्य शिवशङ्करस्य गृहे सर्वम् अपि अक्षयं जातम् । धनम् अपि अक्षयम् अभवत् । एतस्मात् सन्तुष्टौ शिवशङ्करः महादेवी च स्वदानगुणम् अनुवर्तयन्तौ सुखेन जीवन्तौ आस्ताम् ।

स्वसुखसन्तोषादीनां कारणीभूतः भिक्षुकः पुनरपि द्रष्टव्यः इति महादेव्याः इच्छा आसीत् । सः भिक्षुकः कः स्यात् ? कुतः आगतवान् स्यात् ? पुत्रस्य कष्टकाले भिक्षुकः आगत्य सर्वविधानि अपि कष्टानि परिहरिष्यति इति श्वशुरः पूर्वम् एव कथं ज्ञातवान् आसीत् ? इत्यादयः प्रश्नाः महादेव्याः मनसि उत्पन्नाः ।

कानिचन दिनानि अतीतानि । शिवशङ्करः महादेवी च विवाहसमारम्भार्थं सुदूरस्थं बन्धुगृहं गतवन्तौ । विवाहभोजनानन्तरं दरिद्रेभ्यः अन्नदानं कृतवान् तद्गृहस्य स्वामी । तत्र आगतं कश्चित् भिक्षुकम् अभिज्ञातवती महादेवी । सः भिक्षुकः एव शिवशङ्करस्य सुखस्य कारणीभूतः आसीत् ।

महादेवी परिवेषयन्तं कश्चित् उद्दिश्य तं

भिक्षुकं प्रदर्शयन्ती उक्तवती -
“भोजनानन्तरं तं भिक्षुकं मम समीपे
प्रेषयतु” इति ।

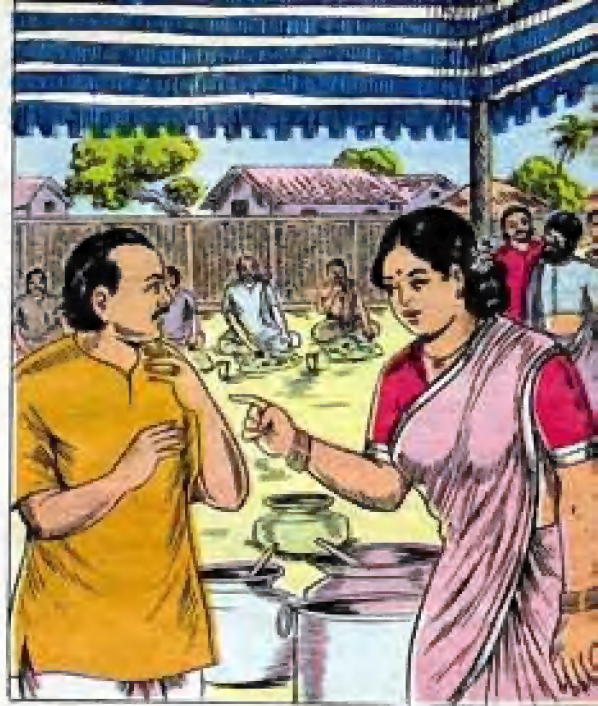
एतत् श्रुत्वा सः परिवेषकः आश्चर्येण
उक्तवान् - “तेन सह किं कार्यं भवत्याः ?
आकण्ठं भोजनं दीयते चेदपि सः पुनरपि
कस्यचित् कृपणस्य गृहं गत्वा भिक्षां
याचते । कृपणः भिक्षां न ददाति चेदपि सः
भिक्षुकः लज्जितः न भवति” इति ।

भोजनानन्तरं परिवेषकेण सूचितः
चेदपि सः भिक्षुकः महादेव्या न
मिलितवान् । अपि तु त्वरया सः ततः
निर्गतवान् । ततः भिक्षुकः कुत्र गच्छति इति
ज्ञातव्यम् इति कुतूहलेन महादेवी
शिवशङ्करः च तं भिक्षुकम् अनुसृतवन्तौ ।

भिक्षुकः ततः कस्यचित् कृपणस्य गृहं
गतवान् । गृहस्य स्वामी कृपणः भिक्षुकाय
किमपि अदत्त्वा तर्जयित्वा प्रेषितवान् ।
ततः सः भिक्षुकः द्वित्राणि गृहाणि गतवान् ।
किन्तु कुतश्चित् अपि किमपि न प्राप्तवान्
भिक्षुकः ।

तावता शिवशङ्करः महादेवी च
भिक्षुकस्य समीपं गतवन्तौ । तदा महादेवी
भिक्षुकम् उद्दिश्य उक्तवती - “महानुभाव !
भवतः अनुग्रहेण अस्माकं कष्टानि
परिहृतानि । इदानीं वयं सुखिनः । किन्तु
भवान् गृहं गृहं गत्वा भिक्षां याचते इति यत्,
तत् महते खेदाय भवति अस्माकम् । अस्माकं
गृहम् आगत्य सुखेन तिष्ठतु भवान्” इति ।

तदा भिक्षुकः महादेवीम् उक्तवान् -



“अम्ब ! यदि अहं भवत्याः गृहे उपविशामि,
तर्हि कालयापनं कथं मम ? मया भिक्षार्थं गृहं
गृहम् अवश्यम् अटनीयम् । सुखी अपि यः गृहं
प्रति आगताय भिक्षुकाय भिक्षाम् अदत्त्वा
एव प्रेषयति, सः निर्धनः भविष्यति । यः
कृपणताकारणात् निर्धनः भविष्यति, तस्य
गृहस्य सम्पदः एव भवतः गृहम् आगत्य
सर्वम् अक्षयं कुर्वन्ति” इति ।

शिवशङ्करः एतत् श्रुत्वा आश्चर्येण
पृष्टवान् - “अस्मदर्थं भवान् गृहं गृहम् अटन्
अस्ति वा ? भवतः कथनस्य तात्पर्यं
किम् ?” इति ।

तदा भिक्षुकः उक्तवान् - “भवान् मां न
अभिज्ञातवान् इति यत् तत्र न किमपि
आश्चर्यम् । यतः अहं तु भिक्षुकवेषेण अटन्

अस्मि । अहं भवतः पिता अस्मि” इति ।

एतत् श्रुत्वा शिवशङ्करः महादेवी च तस्य पादयोः पतित्वा साष्टाङ्गं नमस्कृतवन्तौ । तदा भिक्षुकः वात्सल्येन तौ उत्थाप्य उक्तवान् - “भवतोः जीवने कष्टं यथा न भवेत्, तथा अहं व्यवस्थां करोमि । भवन्तौ गृहं गत्वा सुखेन जीवताम्” इति ।

किन्तु शिवशङ्करः महादेवी च भिक्षुकं साग्रहम् उक्तवन्तौ यत् - “अस्माकं गृहम् आगत्य अस्माभिः सह एव तिष्ठतु” इति ।

तदा भिक्षुकः दैन्येन तौ उद्दिश्य - “ये मृताः, तेषां यदि कापि चिन्ता नास्ति, तर्हि ते दैवसन्निधिं प्राप्नुवन्ति । किन्तु अहं भवतोः गृहस्य भावचित्रम् आश्रित्य स्थितवान् अस्मि । भवतोः विषये एव चिन्ता मम । धनसम्पादनमार्गं भवन्तौ न जानीतः । उत्तमः दानगुणः अस्ति भवतोः । तस्मात् एव मया सम्पादिता सम्पत्तिः अपि शीघ्रम् एव समाप्ता जाता । भवन्तौ धनसम्पादनमार्गं ज्ञात्वा दानार्थं तस्य कस्यचन भागस्य विनियोगस्य अभ्यासं यावत् न कुस्तः, तावत्पर्यन्तम् अपि

अहम् एवमेव भिक्षुरूपेण अटन् भविष्यामि । भवतोः साहाय्यार्थम् एव मया मानवरूपं धृतम् अस्ति, न तु भवतोः गृहे वासार्थम् आगन्तुम् । अतः मया भवतोः गृहं प्रति आगमनं सर्वथा अशक्यं, तत् प्रकृतिविरुद्धम् अपि” इति उक्त्वा ततः अस्थयः जातः ।

पित्रा उक्तं श्रुत्वा शिवशङ्करः दुःखेन अधूणि सावयन् पत्नीम् उक्तवान् - “दानधर्मादिना एतावत्पर्यन्तम् अपि दरिद्राणां साहाय्यं कुर्वन् अस्मि इत्येव चिन्तितवान् अहम् । इतः परम् अहम् एव स्वयं धनसम्पादनं करिष्यामि । तेन पिता मुक्तिं प्राप्स्यति” इति ।

कालक्रमशः शिवशङ्करस्य सम्पादनम् अधिकं जातम् । ये कष्टे सन्ति, तेषां साहाय्यं करोति स्म शिवशङ्करः । किन्तु सः ‘अन्येषां सम्पादनेन अहं दानादिकं कुर्वन् एतावत्पर्यन्तम् अपि पितुः कष्टस्य कारणीभूतः जातः’ इति चिन्तयन् अतीव खेदम् अनुभवति स्म ।



र स वा र्ताः

मकराः अपि शिक्षणदातारः

यदि प्रकृतेः अध्ययनं करणीयं, तर्हि पर्वतप्रदेशाः, जलपाताः, मेघाः, नद्यः, समुद्राः च नृमूढम् परिशीलनीयाः । पुष्पाणां गन्धः आघ्रातव्यः । प्राणिनः पक्षिणः च जागरूकतया परिशीलनीयाः । प्रकृतेः अध्ययनसमये ये सन्देहाः उत्पद्यन्ते, तेषां सन्देहानां निवारकाः पर्वतमेघादग्ः अपि शिक्षकाः एव । धार्म्याण्डदेशस्य



'पामिट्टि' नामके ग्रामे काचित् पाठशाला अस्ति । तस्याः शालायाः समीपस्थे सरोवरे मकराः पाल्यमानाः सन्ति । तस्यां पाठशालायां सहस्राधिकाः विद्यार्थिनः अध्ययनं कुर्वन्तः सन्ति । मकरेभ्यः विद्यार्थिनाम् अपायः सम्भवेत् इति भयात् विद्यार्थिनां पोषकाः उक्तवन्तः यत् - ते मकराः ततः निवारणीयाः इति । किन्तु शालायाः व्यवस्थापकः पोषकान् उक्तवान् अस्ति - 'मकरेभ्यः विद्यार्थिनां कोऽपि अपायः नास्ति । अपि तु ते मकराः प्रकृतिरहस्यान् ज्ञातुं साहाय्यम् आचरन्ति । अतः ते मकराः अपि शिक्षकसमानाः' इति ।

कूरप्राणिनः अपि पाल्यन्ते

केचन शुनकान्, मार्जारान्, शुकान् च गृहे पालयितुम् इच्छन्ति । नेदरल्याण्ड्देशस्य राजधान्याः 'हान्' नगरे वसन्ती काचित् गृहिणी न केवलं शुकान्

शुनकान् च पालयति, अपि तु वृक्षिकान्, सर्पान्, मोषाः च पञ्चरेषु स्थापयित्वा गृहे एव पालयति । एतादृशानां प्राणिनां पालनेन सा गृहिणी अतीव सन्तोषम् अनुभवति । किन्तु एतत् अनिच्छन्तः तस्याः पतिः पुत्राः च तां परित्यज्य गृहात् निर्गन्तुं सिद्धाः सन्ति । यदि भवत्या एतादृशः प्राणिसङ्ग्रहः परित्यज्यते, तर्हि एव वयं गृहे तिष्ठामः इति ते वदन्तः सन्ति ।

स्वामिनिष्ठा

केरलराज्यस्य दक्षिणभागे मेलम्पुड्प्रदेशे कश्चित् विधितगजः अस्ति । विधिति दिनानि यावत् महावृक्षाणां प्रकाण्डानाम् आनयनकार्ये सः गजः निपुणः । रात्रिसमये हस्तिपकः तं गजं शृङ्खलाया गृहे बद्ध्वा गृहं गच्छति स्म । हस्तिपकः गजं यस्मिन् वृक्षे बध्नाति स्म, तस्य वृक्षस्य पार्श्वे एव काचित् नदी प्रवहति । गते अगस्त्यासस्य प्रथमे दिनाङ्के हस्तिपकः यथापूर्वं गजं वृक्षे बद्ध्वा गृहं गतवान् ।



तस्यां रात्रौ नदी-प्रवाहकारमतः वृक्षं परितः विद्यमानः प्रदेशः जलेन आवृतः जातः । तथापि गजः शीङ्करं न कृतवान् । अनन्तरदिने प्रातः-कालसमये गजस्य गुण्डां विना अन्यः सर्वः अपि शरीरभागः जलेनिमग्नः आसीत् ।

एतत् दृष्ट्वा अन्यः कश्चित् हस्तिपकः शृङ्खलां निष्कास्य गजं ततः दूरे नेतुं प्रयत्नं कृतवान् । किन्तु गजः एकं पदम् अपि अग्रे न स्थापितवान् । अनन्तरं तस्य गजस्य स्वामी हस्तिपकः आगत्य तस्य गुण्डाम् आमृष्टवान् । तदा गजः तरणं कुर्वन् तीरप्रदेशं गतवान् ।



मालिन्याः पराक्रमः

पूर्वं धर्मपुरराज्यं राजा दुर्जयः पालयति स्म। सः वर्षे एकवारं सर्वान् स्वसामन्तराजान् आहूय तेभ्यः भूरिभोजनं ददाति स्म। तस्मिन् समये विविधान् मनोरञ्जनकार्यक्रमान्, उत्सवान् च व्यवस्थापयति स्म।

कदाचित् एतादृशे उत्सवसमारम्भे दुर्जयः, तस्य सामन्तराजाः च भोजनार्थम् उपविष्टवन्तः आसन्। सर्वे अपि महता सन्तोषेण परस्परं वार्तालापं कुर्वन्तः आसन्। केचन स्वबलविषये विकल्पनं कुर्वन्ति स्म। केचन स्वकीये राज्ये विद्यमानस्य दुर्गस्य रहस्यमार्गविषये वार्तालापं कुर्वन्ति स्म। अन्ये केचन स्वसमीपे विद्यमानानाम् उत्तमाश्वानां विषये सम्भाषणं कुर्वन्ति स्म।

किन्तु विजयनामकः युवकः कश्चित् मौनम् उपविष्टवान् आसीत्। राजा दुर्जयः

विजयस्य मौनम् अवलोक्य पृष्टवान् - "विजय! सर्वे अपि स्वस्य प्रशंसां कुर्वन्तः सन्ति। किन्तु भवान् मौनम् उपविष्टवान् अस्ति। किमर्थम्?" इति।

तदा विजयः उक्तवान् - "महाराज! यदि मया यस्य कस्यापि प्रशंसा करणीया, तर्हि मम पत्न्याः मालिन्याः एव। पत्न्याः विषये प्रशंसाकरणम् अत्र उचितं न इति विचिन्त्य अहं मौनम् आश्रितवान् अस्मि" इति।

एतत् श्रुत्वा महाराजः - "भवतः पत्न्याः वैशिष्ट्यं किम् इति वदतु। वयम् अपि तत् श्रुत्वा आनन्दम् अनुभविष्यामः। भवतः पत्नी सौन्दर्यवती, उत सङ्गीतज्ञाने निपुणा" इति पृष्टवान्।

तदा विजयः उक्तवान् - "महाराज! सङ्गीतज्ञानं, सौन्दर्यम्, अलङ्कारप्रियता इत्यादिकं सर्वम् अपि मम पत्न्याम् अस्ति। ततोऽपि श्रेष्ठं वैशिष्ट्यं नाम सा अत्यन्तं

पराक्रमवती । खड्गयुद्धे धनुर्युद्धे गदायुद्धे च
तां जेतुं कोऽपि न शक्नोति" इति ।

एतत् श्रुत्वा कुपितः दुर्जयः उक्तवान् -
"अत्र बहवः योधाः उपविष्टाः सन्ति । अतः
भवतः पत्न्याः पराक्रमविषये किञ्चित्
जागरूकया सम्भाषणं करोतु" इति ।

विजयः पुनः उक्तवान् - "महाराज !
मया यत् उच्यते, तत्र कापि अतिशयोक्तिः
नास्ति । भवतः सामन्तराजाः किं, भवान्
अपि मम पत्नीं जेतुं न शक्नोति" इति ।

एतत् श्रुत्वा दुर्जयः अतीव कुपितः । सः
क्रोधेन स्वभटान् आहूय आज्ञप्तवान् - "एतं
दुष्टं नीत्वा पातालगृहे बन्धने स्थापयित्वा
एतस्मै ह्यादितुं यावानलरोटिकाः यच्छन्तु"
इति ।

विजयः ततः किमपि कर्तुम् अशक्तः
राजाज्ञानुसारं मौनं कारागृहं प्रविष्टवान् ।

विजयस्य पत्नी मालिनी पतिम् एव
प्रतीक्षमाणा आसीत् । उत्सवः समाप्तः ।
दिनानि अतीतानि । तथापि पतिः विजयः
न आगतवान् इति कारणतः मालिनी
स्वकर्मकरान् धर्मपुरं प्रेषितवती । ते
कर्मकराः प्रत्यागत्य मालिनीं विषयं
निवेदितवन्तः यत् - विजयः दुर्जयस्य बन्धने
अस्ति इति ।

एतत् श्रुत्वा मालिनी स्वकीयम् अश्वं
सञ्जीकृतवती । शिरश्चाणं कवचं च
धृतवती । खड्गम् अयसः गदादिकं च
स्वीकृतवती । सैनिकैः सह धर्मपुरं प्रति
प्रस्थितवती च ।



नगरात् बहिः एव स्वसैनिकानां वसत्यर्थं
शिविराणां व्यवस्थां कारितवती मालिनी ।
अनन्तरं च सा एकाकिनी एव अश्वम् आरुह्य
महाराजस्य दुर्जयस्य समीपं गतवती ।

वीरोचितवेषधारिणीं पुरुषवेषधारिणीं
च मालिनीं दृष्ट्वा दुर्जयः आश्चर्यचकितः ।
मालिनी महाराजं गाम्भीर्येण - "महाराज !
अहं कलिङ्गमहाराजस्य दूतः अस्मि । भवतः
सकाशात् दशलक्षं रूप्यकाणि स्वीकृत्य
आगच्छतु इत्युक्त्वा मां प्रेषितवान् अस्ति
कलिङ्गराजः । यदि भवान् धनस्य दानं
निराकरोति, तर्हि अहं युद्धार्थं सन्नद्धः सन्
एव आगतवान् अस्मि । चत्वारिंशत्-
सहस्रसैनिकबलयुतम् अस्माकं सैन्यं नगरात्
बहिः स्थितम् अस्ति । भवान् धनं दातुं सिद्धः



उत युद्धार्थं सिद्धः ?” इति पृष्ठवती ।

एतत् श्रुत्वा दुर्जयस्य शरीरे कम्पनम् आरब्धम् । कलिङ्गराजेन सह शत्रुत्वं न क्षेमाय इति जानाति दुर्जयः । किन्तु इदानीं घनस्य दानम् अङ्गीकर्तुम् अपि न शक्यते । यतः तस्य समीपे दशलक्षं रूप्यकाणि सिद्धानि न सन्ति । एवं चिन्तयन् दुर्जयः उक्तवान् - “इदानीं झटिति किमपि वक्तुं न शक्नोमि अहम् । मम चिन्तनार्थं दिनत्रयस्य समयः आवश्यकः” इति ।

तदा मालिनी उक्तवती - “भवतः कथनानुसारं दिनत्रयस्य कालावकाशं ददामि अहम् । किन्तु मम नियमः अस्ति यत् - भवान् भवतः पुत्र्याः विवाहं मया सह कारयति चेत् एव अहं भवतः वचनम्

अङ्गीकर्तुं शक्नुयाम्” इति ।

एतत् श्रुत्वा दुर्जयः किं कर्तव्यतामूढः अभवत् । किञ्चित्कालानन्तरं सः उक्तवान् - “विवाहार्थं मम पुत्र्याः अभिप्रायः प्रष्टव्यः खलु ! तदर्थम् एकदिनस्य कालावकाशः आवश्यकः” इति ।

तदा मालिनी उक्तवती - “भवतु । एकदिनाभ्यन्तरे पुत्र्याः विवाहार्थं सिद्धतां करोतु भवान् । पुनः दिनद्वयानन्तरं दशलक्षं रूप्यकाणि ददातु । नो चेत् युद्धं तु निश्चितम् एव” इति ।

अनन्तरं राजा दुर्जयः प्रवृत्तं सर्वं पुत्रीं निवेद्य आगतेन दूतेन सह विवाहविषये तस्याः अभिप्रायं पृष्ठवान् ।

पितुः वचनं श्रुत्वा राजकुमारी जुगुप्सां प्रकटयन्ती उक्तवती - “दूतस्य व्यवहारादीनां दर्शनेन ज्ञायते यत् सः पुरुषः न, अपि तु स्त्री इति । तादृशम् अहं न परिणेष्यामि । भवान् तु वृथा तस्मात् बिभेति इति मम चिन्तनम्” इति ।

राजा दुर्जयः पुत्र्याः वचनात् किञ्चिदिव धैर्यं प्राप्तवान् । तस्मिन् दिने सायंकाले सः कलिङ्गदूतवेषधारिणीं मालिनीम् आहूय, तां परीक्षितुम् इच्छन् कञ्चन कालं यावत् तया सह द्यूतं क्रीडितवान् । क्रीडायां दुर्जयः पराजयं प्राप्तवान् । अनन्तरं च उभौ अपि अश्वम् आरुह्य उद्यानं गतवन्तौ ।

उद्यानं गत्वा मालिनी दुर्जयम् उक्तवती - “शत्रुयुद्धे भवता सह स्पर्धितुम् इच्छति मम मनः । अतः इदानीम् आवां शत्रुयुद्धं कुर्वः”

इति।

राजा एतत् अङ्गीकृतवान्।

मालिनी खड्गमेकम् एकत्र स्थापितवती। अनन्तरं च खड्गस्य अभिमुखं सुवर्णस्य वलयमेकं लम्बमानं यथा स्यात्, तथा योजितवती। अनन्तरं च सा दुर्जयम् उक्तवती - "आवाम् एतस्मात् वलयस्य अन्तर्भागात् बाणप्रयोगं करवाव। बाणः वलयमध्यतः गत्वा खड्गं स्पृष्ट्वा भग्नः भवेत्। एषः स्पर्धायाः नियमः" इति।

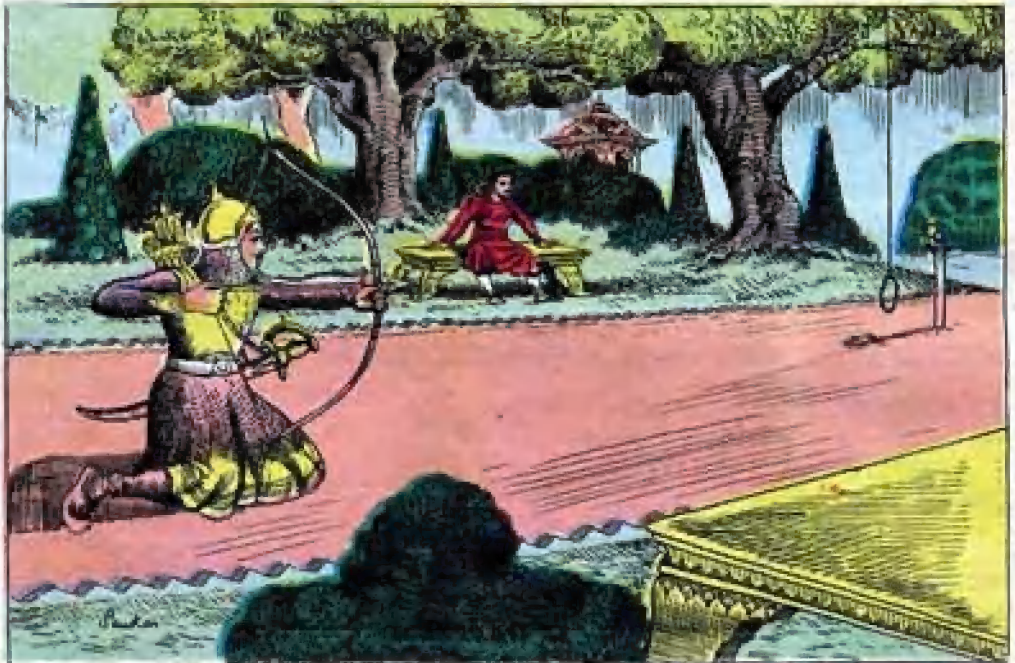
राजा एतत् अङ्गीकृत्य एकैकशः बहून् बाणान् प्रयुक्तवान्। किन्तु एकः अपि बाणः वलयस्य अन्तर्भागं न प्रविष्टः। अनन्तरं मालिनी - "इदानीम् अहं बाणप्रयोगं करोमि" इति वदन्ती स्वघनुः समीकृत्य तूणीरतः बाणमेकं स्वीकृतवती। बाणप्रयोगं

कृतवती च। मालिन्या प्रयुक्तः बाणः सुवर्णवलयस्य अन्तर्भागात् बहिः गत्वा खड्गं स्पृष्टवान्, भग्नः अभवत् च।

मालिन्याः एतं पराक्रमं दृष्ट्वा राजा दुर्जयः दिग्भ्रान्तः।

तस्मिन् दिने रात्रौ दुर्जयः पुत्रीम् उद्दिश्य - "कलिङ्गराजेन प्रेषितः दूतः भवत्या परिजेतव्यः एव। तस्य व्यवहारः स्त्रियः व्यवहारः इव सर्वथा नास्ति। अपि तु सः महान् योद्धाः। तस्य चदुरङ्गकीडादर्शनेन एव ऊहितुं शक्नुमः - सः युद्धे अपि चतुरः, पराक्रमी च" इति वदन् पुत्र्याः विवाहसिद्धतार्थं स्वभटान् आज्ञापितवान्।

अनन्तरदिने मालिनी महाराजं दुर्जयं पृष्टवती - "महाराज! भवतः पुत्रीं मह्यं दत्त्वा विवाहं कारयति खलु?" इति।



तदा राजा - "विवाहार्थं सर्वविधव्यवस्थां कुर्वन् अस्मि" इति उक्तवान् ।

एतत् श्रुत्वा मालिनी स्वगतम् एव हसन्ती - "एवं तर्हि दिनद्वयाभ्यन्तरे दशलक्षं रूप्यकाणि अपि सञ्जीकरोतु । तावत्पर्यन्तं तूष्णीं स्थातुं न शक्नोमि अहम् । अतीव जामिता भवति । अतः मया सह यः कोऽपि गदायुद्धं वा शस्त्रयुद्धं वा कर्तुं शक्नुयात् वा ? तदर्थं व्यवस्थां कारयति वा भवान् ?" इति पृच्छन्ती स्वकीयाम् अयसः गदाम् उपरि क्षिप्त्वा पुनरपि अधः भूमौ यथा न पतेत्, तथा गृहीतवती ।

मालिन्याः सामर्थ्यं दृष्ट्वा आश्चर्यचकितः दुर्जयः उक्तवान् - "योधामेसर ! भवता सह युद्धं कर्तुं समर्थः कोऽपि नास्ति अस्माकं राज्ये । अहं तु वृद्धः अस्मि" इति ।

तदा मालिनी उक्तवती - "भवतः राज्ये युवकाः एव न सन्ति वा ? भवतः कारागृहे बन्धने स्थितेषु साहसिनः केऽपि न सन्ति वा ? यः कोऽपि भवतु । युद्धार्थं सञ्जीकरोतु" इति ।

मालिन्याः वचनं श्रुत्वा दुर्जयः कारागृहे स्थितं विजयं स्मृतवान् । सः भटान् आहूय उक्तवान् - "पातालगृहं गत्वा विजयम् आनयन्तु" इति ।

भटाः विजयं कारागृहतः आनीतवन्तः । पतिं विजयं दृष्ट्वा मालिनी साष्टाङ्गं नमस्कृतवती ।

मालिन्याः व्यवहारात् दुर्जयः आश्चर्यचकितः ।

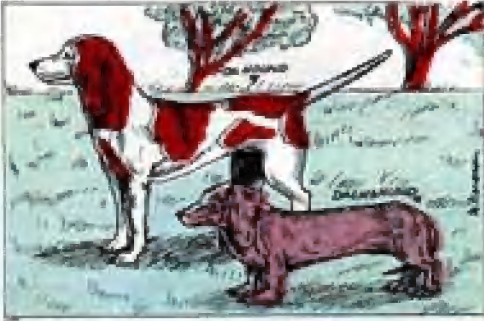
विजयः नमस्कृतवतीं पत्नीम् उत्थाप्य दुर्जयसमीपं नीत्वा तम् उक्तवान् - "महाराज ! एषा मम पत्नी मालिनी । एषा अत्यन्तं पराक्रमवती इति मया पूर्वं यत् उक्तम् आसीत्, तत् इदानीं निरूपितम् अभवत् खलु ?" इति ।

तदा दुर्जयः - "आम् । भवतः पत्नी पराक्रमवती, साहसिनी च" इति वदन् मालिन्याः प्रशंसां कृतवान् ।

अनन्तरं दुर्जयः विजयं मालिनीं च कानिचन दिनानि यावत् अतिथिरूपेण स्थापयित्वा तौ सकृतवान् ।



प्रकृतिवैचित्र्याणि

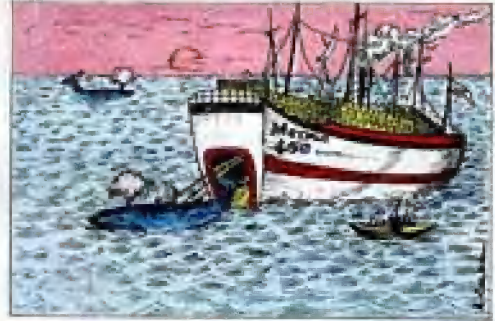


आरक्षकशुनकाः

अपराधिनां ग्रहणार्थं आरक्षकाः शुनकानां साहाय्यं स्वीकुर्वन्ति इति वार्ता वर्यं तदा तदा पत्रिकायां पठामः एव । 'ब्लू हौण्ड' जातीयाः एते शुनकाः अतीव चतुराः । न केवलं तावत्, एतेषाम् आघ्राणशक्तिः अपि अतीव तीक्ष्णा । यस्मिन् प्रदेशे अपराधः प्रवर्तते, तदा तत्र अपराधिनां यः शरीरगन्धः भवति, तदाघारेण शुनकाः अपराधिनां ग्रहणे समर्थाः भवन्ति । 'ब्लू हौण्ड' जाती अपि फाक्स हौण्ड, कून् हौण्ड, बेसेजी, बीगिल, बेसेट, हौण्ड इत्यादयः जातयः सन्ति । 'हाथ हौण्ड' जातीयानां शुनकानाम् आरक्षकशिक्षणदानम् अतीव सुलभम् ।

तिमिङ्गिलस्य उपयोगः

सद्यःकालीना काचित् वार्ता यत् - 'ग्रीन् पीस' नामकनौकास्थः कश्चित् उद्योगी, मृगयां कृत्वा ये तिमिङ्गिलाः सङ्गृहीताः आसन्, ततः एकं तिमिङ्गिलं मोचितवान् इति । किमर्थं तिमिङ्गिलानां मृगयां कुर्वन्ति ? तिमिङ्गिलानां शरीरस्य चर्मणः अन्तः विद्यमानस्य मांसखण्डस्य मध्ये मेदसः अंशः भवति । एतत् तिमिङ्गिलानां, तत्रापि महासमुदेषु शीतलजले ये तिमिङ्गिलाः निवसन्ति, तेषाम् आच्छादकवत् रक्षणकारणं भवति । एतस्य मेदसः अंशं द्रवीकृत्य वर्णानां निर्माणार्थं वार्निष्निमित्तम् उपयुज्यमानस्य तैलस्य निर्माणार्थं च उपयोगं कुर्वन्ति ।



जपान्देशे जनाः तिमिङ्गिलस्य मांसं खादन्ति ।

पक्षिणः कमलपर्णस्योपरि चलन्ति

जले गच्छन्तः पक्षिणः रष्टाः वा भवद्भिः ? जले गच्छन्तः एते 'जाकाना' पक्षिणः मनुष्याणां दर्शनमात्रेण एव धावन्ति । एतेषां समीपं गत्वा सूक्ष्मं यदि परिशील्यते तर्हि ज्ञायते - 'एते न केवलं जले गच्छन्ति, अपि तु कमलपर्णस्य उपरि अपि चलन्ति' इति । एतेषां पक्षिणां दीर्घाः पादाङ्गुल्यः नखाः च



जले प्रवृत्तमानानां पर्णानाम् उपरि अपि शरीरभारं बोधुं साहाय्यम् आचरन्ति । अतः पर्णानि जले निमग्नानि न भवन्ति एतेषां चलनसमये अपि । न केवलम् एतावत्, एते पक्षिणः कमलपर्णेषु नीडम् अपि निर्मान्ति ।

Say "Hello" to text books and friends
'Cause School days are here again
Have a great year and all the best
From Wobbit, Coon and the rest!





It's time to go back to school again. Time for text
books. Time for games. Time to meet old friends.
And make new ones. Time to start studying
again. Because there's so much to learn about
the world around you.

From all of us here at Chandamama, have a
great year in school. And remember to tell us
what you've learnt everyday, when you
come home from school !

THE

CHANDAMAMA
COLLECTION

चित्रशीर्षिका-स्पर्धा * पारितोषिकं १००/- रूप्यकाणि

विजितां शीर्षिकां फेब्रवरी - १९९५ मासे प्रकटयिष्यामः ।



S.G. Seshagiri



Devidas Kasbekar

• उपरितर्न चित्रद्वयं पश्यन्तु । • युक्तं शीर्षिकां परस्पर-सम्बन्धि-वाक्यद्वयेन लिखित्वा डिसेम्बर- २० तः पूर्वम् एव प्रेषयन्तु । • अनन्तरम् आगतां शीर्षिकां न परिशीलयिष्यामः । • स्पर्धायां विजेता १००/- रूप्यकात्मकं पारितोषिकं प्राप्स्यति । • शीर्षिका समपत्रे (पोस्ट-कार्ड) एव लेखनीया । तत्र अन्यः विषयः न लेखनीयः । • अधोनिर्दिष्ट-सङ्केताय शीर्षिका प्रेषणीया -

चन्दमामा (संस्कृतम्) 'अक्षरम्', ८ उपमार्गः, ॥ घट्टः, गिरिनगरम्, बेङ्गलूरु - ५६० ०८५

'अक्टोबर' मासस्य चित्रशीर्षिकास्पर्धायाः परिणामः -

प्रथमचित्रम् - औषधात् एतस्मात् भव रोगमुक्तः ।

द्वितीयचित्रम् - शृणु रे मित्र, वचनं मयोक्तम् ।

प्रेषकः - श्री जितेन्द्रनाथ गुरु, पद्मपुरम्, राजबोडासम्बरम्, सम्बलपुरम् - ७६८०३६ ओडिशा

चन्दमामा

वार्षिकं ग्राहकशुल्कं (भारते) - रु. ६०.००

विदेशीय-ग्राहकशुल्क-विवरणार्थं लिखन्तु -

डाल्टन् एजन्सीस्, चन्दमामा बिल्डिंग्स्, वडपलनी, मद्रास् - ६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

The stories, articles and designs contained herein are exclusive property of the Publishers and copying or adapting them in any manner will be dealt with according to law.

चन्दा मामा



चन्दे की दूरे (वार्षिक)

'अन्धकारमाया परितोक्तमात्म' के नाम से विष्णु पते पर भोजित।

सकयलेशान मैनेजर, चन्द्रामामा पब्लिकेशन्स, चन्द्रामामा बिल्डिंग्स, बडपल्लनी, मद्रास-६०० ०२६

इससे बढकर कौन !



नया

पारले
बिग चीफ

फलों के स्वादवाली टॉफी
केला ♦ मैंगो ♦ ऑरेंज

बधा जग
बिग चीफ

बनना चाहते हो ?

तो कोसले अपने घरे के
साथ बिग चीफ टॉफी के
१० पैक हमें भेजें और
हमारे एक पुरस्कार,
जिसमें है तस्विया
बिग चीफ बनने का

हम भेजेंगे का पत्र
हमारे पास भेजेंगे

पत्रों में लिखेंगे बिग चीफ

8-2500, 8070, 8070, 8070

100 दिनों में 100 दिनों